सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

अर्द्ध-वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सपना भारती, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सुषमा पराशर, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला, ब्रजेश कुमार, डॉ. इन्दुमती सिंह, रमेश चन्द

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

सार्क,अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका प्रत्येक छः माह (जनवरी-जून एवं जुलाई-दिसम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में सार्क, अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका 2 भाग हिन्दी एवं 2 भाग अंग्रेजी में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 4800+500/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क,
वैदेशिक : 6000+2000/- डाक शुल्क, एक प्रति 1200+1000/- डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। सार्क एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है, अतः किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com
मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 जुलाई 2015

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
वर्ष-3 अंक-2 जुलाई-दिसम्बर 2015

शोध प्रपत्र

जयदेव के गीतगोविन्द में रास वर्णन- डॉ. स्मिता द्विवेदी 1-3
उपषिदों का संक्षिप्त परिचय [ब्रह्मविद्या खण्ड]- डॉ. मनीषा शुक्ला 4-18

वाल्मीकि रामायण में पर्दा प्रथा- डॉ. स्मिता द्विवेदी 19-21
उत्तरकालीन जैन महाकाव्यों में विर्वित क्षत्रियों की स्थिति- सुम्बुला फिरदौस 22-24

सामाजिक न्याय : दहेज के परिप्रेक्ष्य में- कीर्ति चौधरी 25-28
सोशल मीडिया का पुस्तकालय पर प्रभाव- अरूण कुमार गुप्त 29-36

21वीं सदी के भारत के लिये विदेश व सामरिक नीति- अर्चना सिंह 37-39
प्राचीन भारत में मानवाधिकार : एक अध्ययन- यश कुमार 40-42

भारत में संसदीय लोकतंत्र : समय की कसौटी पर- ज्योति दुबे 43-48
भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों व समस्याओं को देखने का मार्क्सवादी आईना और उसका समाधान : एक तुलनात्मक अन्तर्दृष्टि- सुबोध प्रसाद रजक 49-53

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में जीवन सम्बन्धों की त्रासदी- आनंद दास एवं डॉ. अंशुमाला मिश्रा 54-56
चौधरी पण्डित बदरीनारायण उपाध्याय "प्रेमघन" की साहित्यिक अवधारणा- डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 57-62

हिन्दी को वैश्वीकरण (ग्लोबल) बनाने के लिये मु- और चुनौतियाँ- डॉ. हेमराज 63-66
मोहन राकेश की नाट्य भाषा- डॉ. नमिता जैसल 67-72

समकालीन परिवेश एवं कबीर- डॉ. विभा मेहरोत्रा 73-77
नागार्जुन के काव्य की जनपक्षधरता और समकालीन प्रासंगिकता- डॉ. निशा यादव 78-81

स्त्री विमर्श के मूल्य और स्त्री लेखन- डॉ. शिवा मिश्रा 82-86

प्रिंट ISSN 2347-8373, वेबसाइट ISSN 2347-8373

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,1-3
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2014

जयदेव के गीतगोविन्द में रास वर्णन

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जयदेव के गीतगोविन्द में रास वर्णन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

महाकवि जयदेव ने संभवतः श्रीमद्भागवत को उपजीव्य बनाकर अपने काव्य गीतगोविन्द की रचना की है, सम्पूर्ण गीतगोविन्द को हम भागवत पर आधारित नहीं मान सकते किन्तु कुछ तत्त्व अवश्य भागवत से लिए गए हैं, यथा 'रास नृत्य का वर्णन' सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त होता है जिसे महाकवि जयदेव ने अपने काव्य गीतगोविन्द में स्थान दिया, किन्तु इसे अपनी लेखनी के माध्यम से नूतन रूप अवश्य प्रदान किया।

गीत गोविन्द का रास; गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग का तृतीय प्रबन्ध रास महोत्सव को समर्पित हैं, जो वसन्त ऋतु में कृत रास है। जयदेव ने सर्वप्रथम बसन्त ऋतु की उन्मादकता को प्रदर्शित करते हुए इस रास का वर्णन प्रस्तुत किया है।

वसन्त ऋतु का वर्णन

सर्वप्रथम महाकवि जयदेव ने वसन्त की सुषमा का वर्णन प्रस्तुत किया है, वसन्त ऋतु में आम की बौरों पर कोयल कूंकने लग गई हैं। 'ललित लवङ्गलतापरिशीलन कोमलमलयसमीरे,/ मधुकरनिकरकराम्बितकोकिल कूँजित कुञ्ज कुटीरे।[1]

यह काल अत्यन्त उन्मादक है जो विरहि मनुष्यों के लिए अत्यन्त कष्टप्रद है। वसन्त काल में बकुल पलाश, सुवर्ण चम्पा, पाटल पुष्प, केतकी तथा कल्प वृक्ष इत्यादि पुष्पों से सज्जित अथवा परिपूर्ण हो गए हैं। यह काल इतना उन्मादक हैं कि हर्ष तथा काम के उद्भूत हो जाने के कारण, जिसमें विरहिणी युवतियाँ अपने पति का विप्रयोग अनुभव करके विलाप कर रही हैं। पलाश पुष्प कामदेव के नख की कान्ति के समान शोभा पा रह हैं, जो युवकों के हृदय को विदीर्ण करने में अत्यन्त सहायक हैं।[2]

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भ्रमर समूहों से परिपूर्ण पाटल पुष्प समूह बाण भरे कामदेव के तुणीर के समान प्रतीत हो रहें है। अतएव यह विलासमय काल विरहिणियों के लिए अत्यन्त कठिन दिखाई पड़ रहा है।

राधा द्वारा कृष्ण का अन्वेषण

राधा इस वासन्ती काल में अपने प्रिय श्री कृष्ण के लिए अत्यन्त विकल हो उठती है तथा यमुना के किनारे के कुंज वनों में उनका अन्वेषण करने लगती है।[3]

जहाँ उसे अपनी किसी प्रिय सखी का दर्शन होता है जो श्री कृष्ण के द्वारा रासमहोत्सव में अनेक युवतियों के साथ सरस नृत्य करने की बात राधा से कह सुनाती है तथा दूर से उन्हें नृत्य करते हुए दिखाती भी है। इस प्रकार राधा उन्हें रास नृत्य में रमा देख स्वयं की महत्ता न होने पर अत्यन्त कष्ट का अनुभव करती है।

नृत्य स्थान की शोभा

नृत्य स्थान चयन में महाकवि जयदेव ने अत्यन्त सिद्धहस्तता दिखाई है वह स्थान वृन्दावन के सन्निकट बहने वाली यमुना जल के पवित्र जल से आच्छादित, निकट के कुंज वन जो आम्र वृक्षों से अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। अनेक प्रकार के वृक्ष सुगन्धित पुष्पों से भर उठे थे, कोयलों ने पंचम स्वर में गाना प्रारम्भ कर दिया था और ललित लवङ्गलताओं के परिशीलन से युक्त मलयाचल की वायु मन्द-मन्दर बह रही थी, उस कुंज कुटीर में भ्रमर समूह कुंजन कर रहे थे, एसे सुन्दर एव मनमोहक स्थल में यह नृत्य आयोजित था।

राधा का ईर्ष्या करना; श्री कृष्ण को रास नृत्य में युवतियों के साथ मग्न देख तथा अन्य गोपिकाओं की अपेक्षा अपनी विशेषता न होने से राधा ईर्ष्या युक्त हो किसी दूसरे लता कुंज में छिप जाती है तथा उन्हें रास की स्मृति होने लगती है। ''रासे हरिमिह विहित विलासं/ स्मरति मनो मम कृत परिहासम्।''[4]

रासोत्सव के समय श्री कृष्ण का मोहक सौन्दर्य

राधा अन्यन्त दुःखी होते हुए भी श्री कृष्ण के अद्भुद् सौन्दर्य पर इतनी मोहित है कि उसे बार-बार उन्हीं की छवि स्मरण होने लगती है तथा वह अपनी सखी के समक्ष गोप्य बातों को भी बड़ी सहजता के साथ उद्घाटित कर देती है।[5]

रास के समय श्री कृष्ण ने मुरली वादन प्रारम्भ किया था। उस समय उनके कुण्डल अत्यन्त मोहक प्रतीत हो रहे थे।[6]

कृष्ण के केशों पर मयूर पिच्छ सुशोभित हो रहे थे। मुस्कुराते हुए श्री कृष्ण के होठ दुपहरिया के पुष्प के समान मालूम पड़ते थे। उनका वक्षस्थल मणिमय आभूषणों के द्वारा अन्धकार को दूर करने वाला था, उनके ललाट का तिलक चन्द्रमा की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाला था। उनके कपोल युगल मकराकृत कुण्डल से समलंकृत थे। इस प्रकार अत्यन्त सौन्दर्यवान श्रीकृष्ण की कटाक्ष दृष्टि भी अत्यन्त सरस मालूम पड़ती थी, जिसने राधा जैसी रूपवती युवति के हृदय को भी आनन्दित कर दिया।

रास क्रीड़ा का वर्णन

चन्दन से लिप्त नीलवर्ण के शरीर वाले पीतवस्त्रधारी, वनमाला धारण करने वाले, मन्द मुस्कान से युक्त श्री कृष्ण ने विलासिनी युवतियों के साथ रास नृत्य प्रारम्भ किया।[7]

श्री कृष्ण ने पंचम स्वर में गायन प्रारम्भ किया। कोई गोपी उनका प्रेम पूर्वक आलिंगन कर उनके गायन का अनुसरण करती है, तभी कोई दूसरी युवति श्री कृष्ण के विलासपूर्ण चंचल नेत्रों का ध्यान मन ही मन करती है, कोई गोपी किसी बात को कान में बताने के बहाने से उनके कपोलों का अच्छी तरह चुम्बन करती है, कोई नायिका श्री कृष्ण के वस्त्र पकड़कर यमुना जल के किनारे खींच लाती है।

हारावलिकार के अनुसार ग्वालों के द्वारा की जाने वाली क्रीड़ा रास कहलाती है- ''रासस्तु गोदहां क्रीड़ा। रास में एक स्त्री के पश्चात् एक पुरुष हुआ करता है, तथा दोनों गीत गा-गाकर आपस में तालिया एक दूसरे की ताली के साथ बजाया करते हैं। इस रास क्रीड़ा में अनेक लोगों का मण्डलाकार समूह हुआ करता है।[8]

इस प्रकार की क्रीड़ा में जो युवति अच्छा प्रदर्शन करती थी श्री कृष्ण उसकी प्रशंसा किया करते थे।[9] 'करतलताल तरल वलयावलिकलितकलस्वनवंशे/ रासरसे सहनृत्यपरा हरिणां युवतिः प्रशशंसे।।'[10]

भगवान गोपियों के रासक्रीड़ा की वेला में अनेक रूप धारण करते हैं वे एक ही समय में किसी गोपी का आलिंगन करते हैं, तो उसी समय किसी दूसरी गोपी का चुम्बन करते हैं। समकाल में ही वे किसी गोपी के साथ रमण करते हैं, उसी समय वे किसी गोपी की सुन्दर मुस्कान को निहारते हैं, साथ ही वे किसी रतिपराङ्गमुख अन्य युवति का अनुगमन करते हैं तथा उसको मनाने के लिए उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

इस प्रकार वृन्दावन के पवित्र कुंजों में श्री कृष्ण द्वारा की गई यह अद्भुत रासक्रीड़ा अत्यन्त कल्याणप्रद तथा यशवर्द्धक है जहाँ श्री कृष्ण को मूर्तिमान श्रृंङ्गार के समान प्रदर्शित किया गया है। 'श्रृंङ्गारः सखि। मूर्तिमानिव मधो मुग्धौ हरिः क्रीडति।'[11]

इस रास में राधा नहीं है किन्तु गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग का अंतिम श्लोक राधा के कुछ समय के लिए उस रास में सम्मिलित होने की बात की पुष्टि करता है जिसमें राधा रास में श्री कृष्ण के उस सुन्दर अलौकिक सौन्दर्य को देख मोहित हो जाती है तथा विलास युक्त गोपाङ्गनाओं के सन्निकट श्री भगवान् के हृदय का गाढ़ालिङ्गन करके मधुर गायन वाले तुम्हारा मुख अमृत के समान है, ऐसा कहकर मोहक मुस्कान बिखेरने वाले श्री कृष्ण का चुम्बन करती है। 'रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामा-भीर वामभ्रुपा। मभ्यर्ण परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमोन्धया राधया। साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति। व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः।।'[12]

इस प्रकार जयदेव ने इस रास में बसन्त ऋतु को वर्णित कर इसके सौन्दर्य को और भी मोहक बना दिया है। इस प्रकार यह अलौकिक रास नृत्य भगवान् की स्तुति के समान ही अत्यन्त मनमोहक और पुण्यदायक है। रास का अर्थ है रस की वृद्धि। यह व्यष्टि समूह और समष्टि का एकीकरण है, व्यष्टि और समष्टि की ओतप्रोतता है। वस्तुतः रास का अभिप्राय ग्रन्थ का मूल प्रयोजन है क्योंकि यह ग्रन्थ केवल वाचन के लिये नहीं है अपितु वाचन के समानान्तर अभिनय के लिए भी है। वाचन और अभियन एक दूसरे के पूरक है। यह काव्य दृश्य भी है श्रव्य भी है संगीत भी है नाट्य भी है। अतः रास नृत्य का प्रस्तुतीकरण कर महाकवि जयदेव ने लास्य नृत्य की एक सुन्दर विधा को जनसाधारण के समक्ष अत्यन्त सुन्दर पदावलियों के माध्यम से प्रदर्शित किया है।

संदर्भ

[1]गीतगोविन्द, 1-3-1
[2]गीतगोविन्द 1 तृतीय प्रबन्ध पर आधारित
[3]गीतगोविन्द 1-3-1
[4]गीतगोविन्द 2-5-2
[5]गीतगोविन्द 2-1
[6]गीत गोविन्द 2-2
[7]गीतगोविन्द 1-3-2
[8]शिवप्रसाद द्विवेदी- रसिक प्रियाटीका गीतगोविन्द पृ0सं0 51
[9]शिवप्रसाद द्विवेदी- रसिक प्रियाटीका गीतगोविन्द पृ0सं0 51
[10]गीतगोविन्द -1-4-7
[11]गीतगोविन्द 1-4-10
[12]गीतगोविन्द 1-4-12

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,4-18
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 अक्टूबर 2015

उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय [ब्रह्मविद्या खण्ड]

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपनिषदों का संक्षिप्त परिचय [ब्रह्मविद्या खण्ड]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अथर्वशिर उपनिषद् देवा ह वै स्वर्ग लोकमायँस्ते देवा रूद्रमपृच्छन्को भवानिति। सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति। सोऽन्तरादन्तरं प्राविशत् दिशश्चान्तरं प्राविशत् सोऽहं नित्यानित्योऽहं व्यक्ताव्यक्तो ब्रह्माहमब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यञ्चोऽहं दक्षिणाञ्च उदञ्चोऽहं अधश्चोर्ध्वं चाहं दिशश्च प्रतिदिशश्चाहं पुमानपुमान् स्त्रियश्चाहं गायत्र्यहं सावित्र्यहं सरस्वत्यहं त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् चाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयोऽहं सत्योऽहं गौरहं गौर्यहमृगहं यजुरहं सामाहमथर्वाङ्गिरसोऽहं ज्योष्ठोहं श्रेष्ठोऽहं वरिष्ठोऽहमापोऽहं तेजोऽहं गुह्योऽहमरण्योऽहमक्षरमहं क्षरमहं पुष्करमहं पवित्रमहमग्रं च मध्यं च बहिश्च पुरस्ताज्जयोतिरित्यहमेव सर्वे मामेव स सर्वे स मां यो मां वेद स देवान्वेद स सर्वांश्च वेदान्साङ्गानपि ब्रह्म ब्राह्मणैश्च गां गोभिर्ब्राह्मणान्ब्राह्मण्येन हविर्हविषा आयुरायुषा सत्येन सत्यं धर्मेण तर्पयामि स्वेन तेजसा। ततो ह वै ते देवा रूद्रमपृच्छन् ते देवा रूद्रमपश्यन्। ते देवा रूद्रमध्यायंस्ततो देवा ऊर्ध्वबाहवो रुद्रं स्तुन्वन्ति।।1।।

कठरूद्रोपनिषद् सशिखान्केशान्निष्कृष्य विसृज्य यज्ञोपवीतं निष्कृष्य ततः पुत्रं दृष्ट्वा त्वं ब्रह्मा त्वं यज्ञस्वं वषट्कारस्त्वमोंकारस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं धाता त्वं विधाता। अथ पुत्रो वदत्यहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं वषट्कारोऽहमोंकारोऽहं स्वाहाहं स्वधाहं धाताहं विधाताहं त्वष्टाहं प्रतिष्ठास्मीति। तान्येतान्युव्रजन्नाश्रुमापातयेत्। यदश्रुमापातयेत्प्रजां विच्छिन्द्यात्। प्रदक्षिणमावृत्त्यैतच्चैतच्चानवेक्षमाणाः प्रत्यायन्ति। स स्वर्ग्यो भवति।।2।। अर्थात् शिखा के साथ बालों का मुण्डन कराकर और यज्ञोपवीत का परित्याग करके, अपने पुत्र को देखकर उससे इस प्रकार कहे कि, ''तुम ब्रह्मा हो, तुम यज्ञ हो, तुम वषट्कार हो, तुम ओंमकार हो, तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा हो, तुम धाता हो, तुम विधाता हो।'' ऐसा सुनने के बाद पुत्र कहे कि, ''मैं ब्रह्मा हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वषट्कार हूँ, मैं ओंमकार हूँ, मैं स्वाहा हूँ, मैं ही धाता, विधाता, त्वष्टा भी हूँ तथा प्रतिष्ठा भी मैं ही हूँ।'' इस प्रकार से परिव्राजक (संन्यासी) होकर घर से बाहर निकलने पर जब पुत्र-पत्नी आदि पीछे- पीछे गमन करें, तो उन्हें देखकर के अश्रुपात न करें। यदि अश्रुपात करेगा, तो उसकी संतान विनष्ट हो जायेगी। उसके बाद वे समस्त परिवारीजन संन्यासी की

* प्रधान सम्पादिका, सार्क पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रदक्षिणा करने के बाद उसे बिना देखे ही यदि वापस लौट जाते हैं, तो इस तरह का संन्यासी देवलोक का अधिकारी होता है।

पिता द्वारा पुत्र से दुहरवाये जाने वाले वाक्यों के पीछे उनका महत्वपूर्ण मन्तव्य है। सद्गृहस्थ जब संन्यासी बने, तो पुत्र को दायित्व सौंपने के साथ उसे आत्म गौरव का बोध करा दे; ताकि पिता का संरक्षण हट जाने पर भी वह आत्महीनता से ग्रस्त न हो, जाग्रत् आत्मविश्वास के साथ अपने दायित्वों का आदर्शनिष्ठ ढंग से निर्वाह कर सके। बिना अश्रुपात के विदाई के पीछे भी मोह-मुक्त और आत्म-विश्वास युक्त होकर होने का भाव है।

कठरूद्रोपनिषद् के पृष्ठ 49 में आया है *ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन मस्करी। दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्य-भाषणम्।।9।। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।।10।। विपरीतं ब्रह्मचर्य-मनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः। यज्जग-द्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत्।।11।।* जिसका तात्पर्य है; संन्यासी को आलस्य-प्रमाद से रहित होकर संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुये जीवनयापन करना चाहिये। स्त्रियों का दर्शन, स्पर्श, क्रीड़ा चर्चा, गुह्य (काम तत्व से सम्बन्धित) विषयों की बात-चीत, काम-संकल्प, सम्भोग के लिये प्रयत्न तथा सम्भोग की क्रिया- ये 8 प्रकार के मौथुन विद्वान् पुरूषों के द्वारा बताये गये हैं। उक्त 8 प्रकार के मैथुन के त्याग रूप ब्रह्मचर्य का पालन मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले लोगों को करना चाहिये।

कुण्डिकोपनिषद् में आया है *लोकवद्भार्ययाऽऽसक्तो वनं गच्छति संयतः। संत्यक्त्वा संसृतिसुखमनुतिष्ठति किं मुधा।।7।। किंवा दुःखमनुस्मृत्य भोगांस्त्यजति चोच्छ्रितान्। गर्भवासभयाद्भीतः शीतोष्णाभ्यां तथैव च।।8।।* जिसका तात्पर्य है; साधारण लोगों की तरह स्त्री एवं सांसारिक सुखों का परित्याग कर वन में गमन करके अनुष्ठान आदि करने से क्या लाभ है? अथवा गर्भवास के भय से ठण्डी-गर्मी, सुख-दुःख आदि से भयभीत हुआ मनुष्य सांसारिक भोगों का त्याग क्यों करता है?

कौषितकिब्राह्मणोपनिषद् के पृष्ठ संख्या 62 में आया है *स होवाच ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति। तेषां प्राणैः पूर्वपक्ष आप्यायते। अथापरपक्षे न प्रजनयति। एतद्वै स्वर्गस्य लोकस्य द्वारं यश्चन्द्रमास्तं यत्प्रत्याह तमति-सृजतेऽथ य एनं प्रत्याहतमिह वृष्टिर्भूत्वा वर्षति स इह कीटो वा पतङ्गो वा शकुनिर्वा शार्दूलो वा सिंहो वा मत्स्यो वा परश्वा वा पुरूषो वान्यो वैतेषु स्थानेषु प्रत्याजायते यथाकर्म यथाविद्यम्। तमागतं पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयाद्विचक्षणादृतवो रेत आभृतं पञ्चदशात्प्रसूतात्पित्र्यावतस्तन्मा पुंसि कर्तर्येरयध्वं पुंसा कर्त्रा मातरि मा निषिक्तः स जायमान उपजायमानो द्वादश त्रयोदश उपमासो द्वादशत्रयोदशेन पित्रा संतद्विदेहं तन्म ऋतवो मर्त्यव आरभध्वम्। तेन सत्येन तपसर्तुरस्म्यार्तवोऽस्मि कोऽसि त्वमस्मीति तमति सृजते।।2।।* जिसका तात्पर्य है; महर्षि चित्र ने कहा- हे राजन्! जो भी कोई लोग अग्निहोत्रादि सत्कार्यों का अनुष्ठान करने वाले हैं, वे सभी जब इस लोक से प्रयाण करते हैं, तो वे चन्द्रलोक अर्थात् स्वर्ग लोक में गमन करते हैं। पूर्व पक्ष में (पुण्य शेष रहने तक) वे प्राणों द्वारा वहाँ के भोग पदार्थों का सेवन करते हैं। दूसरे पक्ष में (अर्थात् स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त भूत पुण्यों के क्षीण होने पर) चन्द्र लोक प्राणियों की तृप्ति नहीं दे पाता।

निश्चय ही यह चन्द्रमा स्वर्ग लोक के द्वार के नाम से प्रसिद्ध है। जो अधिकारी (दैवी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण) उस स्वर्ग रूप चन्द्रमा का प्रत्याख्यान कर देता है (अर्थात् जहाँ से फिर से नीचे गिरना पड़े, ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये। ऐसा कहते हुये चन्द्रलोक का परित्याग कर देता है।) उस पुरूष को उसका वह शुभ संकल्प चन्द्रलोक से भी ऊपर अविनाशी ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित करा देता है, लेकिन जो पुरूष स्वर्गीय सुख के प्रति ही आसक्त होने के कारण चन्द्रलोक को स्वीकार कर लेता है, उस कामनायुक्त स्वर्गवासी को उसके पुण्य भोग के समाप्त होने पर उसे सभी देव वर्षा के रूप में परिवर्तित करके उसी लोक में ही पुनः बरसा देते हैं। वर्षा के रूप में वह यहाँ आया हुआ कर्मफल को भोक्ता जीव स्वकृत पूर्व वासनानुसार कीटपतंग या पक्षी, व्याघ्र, सिंह, मछली, साँप, बिच्छू, मनुष्य या अन्य कोई दूसरा जीव होकर अनुकूल शरीरों में स्वकर्म एवं विद्या (उपासना) के अनुसार ही यहाँ-वहाँ जन्म लेता है। इस प्रकार अपने पास में आये हुये शिष्य से दयालु एवं तत्वज्ञान धारण करने वाले गुरू को इस तरह से पूछना चाहिये- हे वत्स! तुम कौन हो? गुरू के इस तरह से पूछने पर शिष्य को इस तरह उत्तर देना चाहिये। हे देवताओं! जो 15 कलाओं से युक्त शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष के कारणभूत श्रद्धा के माध्यम से प्रादुर्भूत, पितृलोक स्वरूप एवं विभिन्न प्रकार के भोगों को प्रदान करने में समर्थ है, उन चन्द्रमा के समीप से उत्पन्न होकर पुरूष रूप अग्नि में स्थापित हुआ, जो श्रद्धा, सोम, वृष्टि एवं अन्न का परिणामभूत वीर्य है, उस

वीर्य के ही रूप में केन्द्रित हुये मुझ कर्मफल के भोक्ता जीव को तुमने वीर्याधान करने वाले पुरूष में प्रेरित किया। तदनन्तर गर्भाधान करने वाले पुरूष (पिता) के द्वारा तुमने मुझको माता के गर्भ में धारण करवाया। माता के गर्भ में द्वादश-त्रयोदश आर्षमास (23 दिन का एक आर्षमास) तक रहकर जन्म लिया। इस कारण अब मुझे अमृतत्व की प्राप्ति के साथ साधन-भूत ब्रह्मज्ञान हेतु अनेक ऋतुओं तक अक्षय रहने वाली दीर्घायु प्रदान करें। ब्रह्म के साक्षात्कार तक मेरे दीर्घ जीवन हेतु चिर-स्थाई आयु की पुष्टि प्रदान करें, क्योंकि यह सब कुछ जानकर के मैं समस्त देवताओं से प्रार्थना करता हूँ; इसलिये उसी सत्य से, उसी तप से, जिनका कि मैंने अभी उल्लेख किया है, मैं वही ऋतु हूँ अर्थात् संवत्सरादि रूप मरणाधर्मा मनुष्य हूँ। आर्तव हूँ- ऋतु अर्थात् रज-वीर्य के माध्यम से प्रादुर्भूत हुआ शरीर हूँ और यदि ऐसी बात नहीं है, तो आप ही कृपा करके बतायें कि मैं कौन हूँ? उस (शिष्य) के इस तरह से कहने पर संसार के भय से भयभीत हुये शिष्य को गुरू ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा भवसागर से पार करके बंधनों से मुक्ति प्रदान कर देता है।

स एतं देवयानं पन्थानमासाद्याग्निलोकमागच्छति स वायुलोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्य आरो ह्रदो मुहूर्तोऽन्वेष्टिहा विरजा दील्यो वृक्षः सालज्यं संस्थानमपराजितमायतन-मिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौं विभुप्रमितं विचक्षणाऽऽसन्द्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यावयतौ वै च जगान्यम्बाश्चाम्बावयवीश्चाप्सरसः। अम्बया नद्यस्ततित्थंविदा गच्छति तं ब्रह्मा हाभिधावत मम यशसा विरजां वा अयं नदीं प्रापन्न वा अयं जरयिष्यतीति।।3।। अर्थात्, वह विराट् ब्रह्म का उपासक पूर्व में कहे हुये देवयान मार्ग पर पहुँच कर सर्वप्रथम अग्नि-लोक में गमन करता है। तदनन्तर वायुलोक में प्रस्थान करता है, फिर वहाँ से वह सूर्यलोक में गमन करता है, इसके बाद वरूण लोक में आता है, फिर वह इन्द्रलोक में आता है, इन्द्रलोक से प्रजापति लोक में गमन करता हुआ ब्रह्मलोक में आ जाता है। इस ख्याति प्राप्त ब्रह्मलोक के प्रवेश मार्ग पर सर्वप्रथम 'अर' नामक एक महान् प्रसिद्ध जलाशय है। (काम, क्रोध, लोभादि अरियों-शत्रुओं के द्वारा निर्मित होने से ही उस जलाशय को अर के नाम से जाना गया है।) उस अर नामक जलाशय से आगे मुहूर्ताभिमानी देवता का स्थान है, काम, क्रोध, लोभादि की प्रवृत्ति प्रादुर्भूत करके ब्रह्मलोक प्राप्ति के अनुकूल की हुई उपासना एवं यज्ञादि पुण्य को नष्ट करने से 'इष्टिहा' (जो इष्ट वस्तु की प्राप्ति में बाधा पहुँचाते हैं) कहलाते हैं। इसके आगे 'विरजा' नाम वाली नदी विद्यमान है, इस नदी के दर्शन मात्र से ही वृद्धावस्था दूर हो जाती है। इस नदी से आगे 'इन्य' नामक वृक्ष स्थित है। 'इला' पृथ्वी का नाम है और उस (इला) का ही स्वरूप होने के कारण उस वृक्ष का नाम 'इल्य' पड़ा। उससे आगे कई अनेक देवों के द्वारा सेब्यमान उद्यान, बावली, कूप, सरोवर एवं नदी आदि अलग-अलग जलाशयों से युक्त एक नगर है, उस नगर के एक ओर विरजा नामक नदी है एवं दूसरी ओर धनुष की प्रत्यञ्चा के आकार का (अर्द्धचन्द्राकार) एक परकोटा (चहारदीवारी) है। उसके आगे ब्रह्माजी का निवासभूत विशाल देवालय है, जो अपराजित के नाम से ख्यात है। सूर्य के सदृश तेजस्वरूप होने के कारण वह कभी भी किसी के द्वारा पराजित नहीं होता। मेघ एवं यज्ञरूप से उपलक्षित वायु तथा आकाश स्वरूप इन्द्र और प्रजापति उस ब्रह्म देवालय के द्वार-रक्षक के रूप में विद्यमान है।

वहाँ पर एक सभा मण्डप है, जिसका नाम 'विभुप्रमित' है। उस सभा मण्डप के मध्य भाग में स्थित एक वेदी (चबूतरा) है, जो 'विचक्षणा' के नाम से प्रख्यात है। (उस वेदी का प्रतिपादन बुद्धि एवं महत्तत्त्व आदि के नामों से भी होता है) वह अति विशेष लक्षणों से युक्त है। जो अपरिमित बल से सम्पन्न है, ऐसा वह 'अमितौजस्' नामक प्राण ही भगवान ब्रह्माजी का सिंहासन (पलंग) है। मानसी प्रकृति मन की कारणभूता होने से या फिर मन को आनंद प्रदान करने वाली होने के कारण वह मानसी कहलाती है। उसके आभूषण भी उसी के अनुरूप है। 'चाक्षुषी' के नाम से उसकी छायामूर्ति की ख्याति है। वह तेजोयुक्त नेत्रों की प्रकृति होने के कारण अति तेज स्वरूप है। उसके अलंकारादि भी अत्यन्त तेजोमय है। यह संसार इन चतुर्विध प्राणियों-जरायुज, स्वेदज, अण्डज तथा उद्भिज्ज से परिपूर्ण है। समस्त विश्व, जड़-चेतन समुदाय भगवान ब्रह्माजी की वाटिका के पुष्प एवं उनके धौत (धोती) और उत्तरीय के रूप में युगल वस्त्र हैं। वहाँ की अप्सरायें (साधारण युवतियाँ) 'अम्बा' एवं 'अम्बावयवी' के नाम से प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण विश्व को जन्म-देने वाली श्रुतिरूपा होने से वह 'अम्बा' के नाम से प्रसिद्ध है और 'अम्ब' (अधिक) एवं 'अवयव' (अंश-न्यून) भाव से रहित बुद्धिरूपा होने के कारण उनका नाम 'अम्बा-वयवी' पड़ा। इसके अतिरिक्त वहाँ 'अम्बया' नाम वाली नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं। अम्बक अर्थात् नेत्ररूप ब्रह्मज्ञान की

ओर गमन करने के कारण ऊनकी 'अम्बाया' संज्ञा है। ऐसे उस श्रेष्ठ ब्रह्म के लोक को जो भी मनुष्य जानता है, वह उसी को प्राप्त होता है। उस पुरूष को जब कोई अमानव पुरूष आदित्यलोक से हमारे अर्थात् ब्रह्मलोक के लिये लाता है, तब उस समय ब्रह्माजी अपने सहायकों एवं अप्सराओं से कहते हैं- दौड़ो, उस महात्मा पुरूष का मेरे यश एवं प्रतिष्ठा के अनुकूल स्वागत करो। मेरे लोक में लाने वाली उपासना आदि के कारण निश्चय ही यह (महान पुरूष) उस विरजा नदी के पास तक आ गया है। निश्चय ही अब वह पुरूष वृद्धावस्था नहीं प्राप्त करेगा।

तं पञ्चशतान्यप्सरासां प्रतियन्ति शतं चूर्णहस्ताः शतं वासोहस्ताः शतं फलहस्ताः शतमाञ्चनहस्ताः शतं माल्यहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणालंकुर्वन्ति स ब्रह्मालंकारेणालंकृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्माभिप्रैति स आगच्छत्यारं ह्रदं तं मनसाऽत्येति। तमित्वा संप्रतिविदो मज्जन्ति स आगच्छति मुहूर्तान्विहेष्टिहास्तेऽस्मादपद्रवन्ति स आगच्छति विरजां नदीं तां मनसैवात्येति। तत्सुकृतदुष्कृते धुनुते। तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतं तद्यथा रथेन धावयन्नथचक्रे पर्यवेक्षत, एवमहोरात्रे पर्यवेक्षत एवं सुकृतदुष्कृते सर्वांणि च द्वंद्वानि स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मैवाभिप्रैति।।4।। अर्थात्; (ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त होने पर उस पुरूष के सम्मान के लिये) 500 अप्सरायें जाती हैं। उनमें से 100 अप्सरायें तो हाथों में (मंगल द्रव्य, केशर, हल्दी एवं रोली आदि के) चूर्ण लिये रहती है। अन्य 100 के हाथों में तरह-तरह के दिब्य वस्त्र तथा आभूषण आदि होते हैं। अन्य 100 अप्सरायें अपने हाथों में फल लिये होती हैं, अन्य 100 के हाथों में विभिन्न तरह के दिब्य अङ्गराग होते है एवं 100 अप्सरायें अपने हाथों में भांति-भांति की मालायें उसके सम्मानार्थ लिये होती है। वे सभी अप्सरायें उस महान आत्मा को ब्रह्मोचित अलंकारों से सुसज्जित करती हैं। वह ब्रह्मवेत्ता पुरूष ब्रह्माजी के योग्य आभूषणों को धारण करके ब्रह्माजी के स्वरूप को प्राप्त करलेता है। तदनंतर वह 'अर' नाम वाले सरोवर के समीप आकर उसे मन के द्वारा संकल्प मात्र से पार कर लेता है। उस जलाशय के समीप पहुँच कर अज्ञानी पुरूष उसमें डूब जाते हैं। तत्पश्चात् वह ब्रह्मज्ञानी मुहूर्त्ताभिमानी 'इष्टिहा' नामक देवताओं के समीप में आता है; लेकिन वे विघ्नकारी देवता उसके पास से डरकर भाग जाते हैं। उसके बाद वह विरजा नदी के तट पर आ करके उस नदी को भी संकल्प मात्र से लांघ जाता है। वहाँ पर वह ब्रह्मज्ञानी अपने समस्त पुण्य एवं पापों को त्याग देता है। जो उसके कुटुम्बी प्रियपरिजन आदि होते हैं, वे सभी लोग तो उसके पुण्य के भागीदार बनते हैं; किन्तु जो उस (दिव्यात्मा) से द्वेष करने वाले होते हैं, उन्हें उसके द्वारा त्यागे हुये पापों का भागीदार बनना पड़ता है। (उस संदर्भ में यह दृष्टान्त इस प्रकार है)- रथ के द्वारा यात्रा करने वाला पुरूष दौड़ाते हुये रथ के दोनों चक्रों का भूमि से जो संयोग-वियोग होता है, वह उन चक्रों को देखते रहने पर भी आरोही को प्राप्त नहीं होता, वैसे ही वह ब्रह्मवेत्ता पुरूष रात एवं दिन को, पाप एवं पुण्य को तथा अन्य सभी तरह के द्वन्द्वों को देखता है, परन्तु द्रष्टा होने के कारण ही वह इनसे सम्बन्धरहित रहता है। इस कारण वह पुण्य एवं पाप से रहित होता है। अतः ब्रह्मज्ञान के कारण ही वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

स आगच्छतील्यं वृक्षं तं ब्रह्मगन्धः प्रविशति, स आगच्छति सालज्यं संस्थानं तं ब्रह्मरसः प्रविशति, स आगच्छत्यपराजितमायत्नं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छति। इन्द्रप्रजापति द्वारगोपौ तावस्मादपद्रवतः स आगच्छति विभुप्रमितं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति स आगच्छति विचक्षणामासन्दीं ब्रहद्रथन्तरे सामनी पूर्वौ पादौ श्यैतनौधसे चापरौ वैरूपवैराजे अनूच्येते शाक्वररैवते तिरश्ची सा प्रज्ञा प्रज्ञया हि विपश्यति स आगच्छत्यमितौजसं पर्यङ्कं स प्राणस्तस्य भूतं च भविष्यच्च पूर्वौ पादौ श्रीश्चेरा चापरौ बृहद्रथंतरे अनुच्ये भद्रयज्ञायज्ञीये शीर्षण्ये ऋचश्च सामानि च प्राचीनातानानि यजूंषि तिरश्चीनानि सोमांशव उपस्तरणमुद्रीथ उपश्रीः श्रीरूपबर्हणं तस्मिन्ब्राह्मास्ते तमित्थंवित्पादेनैवाग्र आरोहति। तं ब्रह्मा पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात्।।5।। इसके बाद वह (पुरूष) 'इल्य' नामक वृक्ष के पास गमन करता है। उस समय उसकी घ्राणेन्द्रिय में ब्रह्म-गंध का प्रवेश होता है। तदनंतर वह 'सालज्य' नामक नगर के पास आता है, वहाँ उसकी स्वादेन्द्रिय में उस दिब्यातिदिब्य ब्रह्मरस की अनुभूति होती है, जिसका कि उसे इसके पहले कभी भी अनुभव नहीं हुआ होता। इसके बाद वह 'अपराजित' नाम वाले ब्रह्म मंदिर के पास में आता है। वहाँ पर उसमें ब्रह्मतेज का प्रवेश होता है, फिर वह द्वार रक्षक इन्द्र एवं प्रजापति के समीप में गमन करता है। प्रजापति उसके सामने से रास्ता छोड़कर हट जाते हैं। इसके बाद वह 'विभुप्रमित' नामक सभा मण्डप में पहुँचता है, वहाँ पर उसके अन्तःकरण में ब्रह्मयश प्रविष्ट करता है, फिर वह 'विचक्षणा' नाम से युक्त वेदी के समीप में आता है। 'बृहत्' एवं 'रथन्तर' ये दो साम उस पलंग के दोनों अग्रभाग के पाये हैं और 'श्यैत' एवं 'नौधस' नामक साम उसके दोनों

पृष्ठ भाग के पाये है। 'वैरूप' तथा 'वैराज' नाम से युक्त ये साम उसके दक्षिणी एवं उत्तरी पार्श्व हैं। 'शाक्वर' एवं 'रैवत' नामक साम उसके पूर्वी और पश्चिमी पार्श्व हैं। यह समष्टि-बुद्धिरूपा है। वह ब्रह्मवेत्ता उस बुद्धि के माध्यम से विशेष दृष्टि प्राप्त कर लेता है। इसके बाद वह 'अमितौजस्' नामक पलंग अथवा सिंहासन के समीप में आताा है, वह पर्यङ्क (पलंग) प्राणरूप ही है, भूत और भविष्यत् काल उसके अग्रभग के पाये हैं, श्रीदेवी या भूदेवी ये दोनों उस सिंहासन के पृष्ठभाग के पाये है। उसके उत्तर एवं दक्षिण क्षेत्र में जो 'अनूच्य' नामक दीर्घ खट्वाङ्ग है, वे 'बृहत्' एवं 'रथन्तर' नाम से युक्त साम है; और पूर्व एवं पश्चिम क्षेत्र में जो छोटे खट्वाङ्ग है और जिन पर सिर एवं पैर रखे जाते हैं, वे 'यज्ञायज्ञीय' नामक साम है। पूर्व से पश्चिम दीर्घाकार के रूप में लगी हुई पाटियाँ ऋक् एवं साम की प्रतीक है। दक्षिण एवं उत्तर की ओर जो आड़ी तिरछी लगी हुई पाटियाँ हैं, स्वयं यजुर्वेद स्वरूप ही है। चन्द्रमा की कोमल एवं शीतल रश्मियाँ ही उस पर्यङ्क (पलंग) के मुलायम गद्दे के रूप में है। उद्गीथ ही उसपर बिछी हुई उपश्री अर्थात् श्वेत चादर है। श्रीलक्ष्मी जी, उस पलंग पर तकिया के रूप में हैं। ऐसे दिब्य पर्यङ्क पर भगवान ब्रह्माजी सुशोभित होते हैं। इस श्रेष्ठ तत्वज्ञान को इस प्रकार से भलीभांति जानने वाला ब्रह्मज्ञानी उस पलंग पर सर्वप्रथम पैर रखकर आसीन होता है।

उसके बाद ब्रह्माजी उस ब्रह्मज्ञानी से प्रश्न करते हैं- तुम कौन हो? उन भगवान ब्रह्माजी के प्रश्न का उसे इस प्रकार से देना चाहिये।

ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्या एतत्संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्य भूतस्य भूतस्यात्मा त्वमात्मासि यस्त्वमसि सोऽहमस्मीति तमाह कोऽहमस्मीति सत्यमिति ब्रूयात्किं तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ यद्देवाश्च प्राणाश्च तत्त्यं तदेतया वाचाऽभिव्या ह्रियते सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसि। इत्येवैनं तदाह। तदेतदृक्श्लोकेनाभ्युक्तम् यजूदरः सामशिरा आसावृङ्मूर्तिरब्ययः। स ब्रह्मोति स विज्ञेय ऋषिर्ब्रह्मयो महानीति। तमाह केन मे पौंस्यानि नामान्याप्नोतीति प्राणेनेति ब्रूयात्। केन स्त्रीनामानीति वाचेति केन नपुंसकानीति मनसेति केन गंधानीति प्राणेनेत्येव ब्रूयात्। केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानीति श्रोत्रेणेति केनान्नरसानीति जिह्वयेति केन कर्माणीति हस्ताभ्यामिति केन सुख-दुःखे इति शरीरेणेति केनानंद रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति। केनेत्या इति पादाभ्यामिति केन धियो विज्ञातब्यं कामानिति प्रज्ञयेति ब्रूयात्तमाह। आपो वै खलु मे ह्यसावयं ते लोक इति सा या ब्रह्मणो जितिर्या व्यष्टिस्तां जितिं जयति तां व्यष्टिं व्यश्नुते य एवं वेद य एवं वेद।।6।। मैं स्वयं ही वसन्तादि ऋतु स्वरूप हूँ, ऋतु से सम्बन्धित हूँ। मैं कारणभूत अव्याकृत आकाश एवं स्वयं प्रकाश रूप परब्रह्म अविनाशी परमात्मा तत्व से प्रादुर्भूत हुआ हूँ। जो भूत (अतीत, यथार्थ कारण, जड़-चेतन स्वरूप चतुर्विध सर्ग एवं पंच महाभूत स्वरूप) है, उस सम्वत्सर का तेज मैं स्वयं हूँ। मैं स्वयं आत्मा हूँ। आप आत्मा हैं, हे भगवन्! जो आप हैं, वही मैं हूँ। उस ब्रह्मवेत्ता के इस तरह से उत्तर देने पर ब्रह्माजी पुनः पूछते हैं कि मैं कौन हूँ? इसके उत्तर में वह इस प्रकार कहे- आप सत्य हैं, जिसे तुम सत्य कहते हो, वह क्या है? ऐसा प्रश्न ब्रह्माजी के द्वारा पूछने पर वह इस प्रकार उत्तर दे- जो समस्त देवताओं एवं प्राणों से भी सर्वथा भिन्न एवं विशेष लक्षणों से युक्त हो, वह 'सत्' है और जो देवता प्राणस्वरूप है, वह 'त्य' है। वाणी के द्वारा जिस तत्व को 'सत्य' कहते हैं, वह यही है। यही सभी कुछ है। आप ही यह सभी कुछ है, अतः आप ही सत्य हैं। यही तथ्य ऋग्वेद के मंत्र में इस प्रकार व्यक्त हुआ है- 'जिसका उदर यजुर्वेद है, मस्तक समावेद तथा सम्पूर्ण शरीर ऋग्वेद है, वह अविनाशी परमात्मा 'ब्रह्मा' के नाम से विख्यात है, वह जानने योग्य है वह ब्रह्ममय-ब्रह्मरूप महान ऋषि है। इसके बाद पुनः ब्रह्माजी उस उपासक से पूछते हैं- तुम मेरे पुरूषवाचक नामों को किससे ग्रहण करते हो? वह उत्तर दे-प्राण से। (प्र0)-स्त्रीवाचक नामों को किससे ग्रहण करते हो? (उ0) वाणी से। (प्र0) नपुंसक वाची नामों को किससे ग्रहण करते हो? (उ0) मन से। (प्र0) गंध का अनुभव किससे करते हो? (उ0) प्राण से-घ्राणेन्द्रिय से। (प्र0) रूपों को किससे ग्रहण करते हो? (उ0) नेत्र से। (प्र0) शब्दों को किससे सुनते हो? (उ0) कानों से। (प्र0) अन्न का आस्वादन किससे करते हो? (उ0) जीह्वा से। (प्र0) कर्म किससे करते हो? (उ0) हाथों से। (प्र0) सुख-दुःखों का अनुभव किससे करते हो? (उ0) शरीर से। (प्र0) रति का आनंद एवं प्रजोत्पत्ति का सुख किससे उठाते हो? (उ0) उपस्थ से। (प्र0) गमन क्रिया किससे करते हो? (उ0) दोनों पैरों से। (प्र0) बुद्धि-वृत्तियों को, ज्ञातव्य विषयों को और मनोरथों को किससे ग्रहण करते हो? (उ0) प्रज्ञा से- ऐसे कहे। तब ब्रह्मा उससे कहते हैं- 'जल' आदि प्रसिद्ध पांच महाभूत मेरे स्थान हैं, अतः यह मेरा लोक भी जलादि-तत्व-प्रधान ही है। तुम मुझसे अभिन्न मेरे उपासक हो, अतः यह तुम्हारा भी लोक है। वह ब्रह्मा की जो जिती (विजय करने की शक्ति) तथा

व्यष्टि (सर्वव्यापकता) शक्ति है, वह उपासक इन दोनों शक्तियों को भी प्राप्त कर लेता है, जो इस प्रकार जानता है अर्थात् इस प्रकार का ज्ञान रखने वाला ब्रह्मा की तरह शक्ति-सम्पन्न हो जाता है।

अथ मासि मास्यमावास्यायां पश्चच्चन्द्रमसं दृश्यमानमुपतिष्ठेतैतयैवावृता हरितृणाभ्यां वाक्यप्रत्यस्यति यत्ते सुसीमं हृदयमधि चन्द्रमसि श्रितं तेनामृतत्वस्येशाने माऽहं पौत्रमघं रूदमिति न हास्मात्पूर्वाः प्रजाः प्रैतीति नु जातपुत्रस्याथाजातपुत्रस्याप्यायस्व समेतु ते सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा यमादित्या अंशुमाप्याययन्तीत्येतास्तिस्त्र ऋचो जपित्वा माऽस्माकं प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययिष्ठा योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तस्य प्राणेन प्रजया पशुभिराप्याययस्वेति दैवीमावृतमावर्त आदित्यस्यावृतमन्वावर्त इति दक्षिणं बाहुमन्वावर्तते।।8।। (अब दूसरी उपासना का वर्णन करते हैं) हर महीने की अमावस्या को, जब सूर्य के पश्चिम भाग में स्थित सुषम्ना नामक रश्मि में चन्द्रमा का स्थित होना स्पष्ट परिलक्षित हो, उस समय उपर्युक्त विधि से ही उपस्थान (पूजन) करे। इसकी विशेषता मात्र इतनी ही है कि अर्घ्यपात्र में दो हरी दूर्वा के अंकुर भी रखे एवं उससे अर्घ्य देते हुये चन्द्रमा के प्रति *यत्ते सुसीमं हृदयमधि.....पौत्रमघं रूदम्* मंत्र से वाणी का प्रयोग करें। इस मंत्र का भाव यह है- हे सोममण्डल की अधिष्ठत्री देवि! अतिसुन्दर भावना से युक्त आपका हृदय (हृदय में स्थित आनंदमय स्वरूप) चन्द्रमण्डल में विद्यमान है, उसके द्वारा आप अमृतत्व पद पर भी अधिकार रखने वाली हैं। आप मुझ पर ऐसी कृपा करें, जिससे कि कभी पुत्र के शोक से मुझे व्यथित होकर रोना न पड़े। इस तरह से उपासना करने वाला यदि पुत्र को प्राप्त कर चुका हो, तो उसका पुत्र उसके मरने से पूर्व मृत्यु को नहीं प्राप्त होगा। यदि उसके कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ हो, तो वह भी पूर्व की ही तरह सभी कार्य सम्पन्न करके दो हरी दूर्वा के अंकुर रख करके नीचे लिखे मंत्रों का जप करे- (क) 'आप्यायस्व समेतु....संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः। (ख) आप्यायमानो.....धिष्वा (ग) यमादित्या.....भुवनस्य गोपाः। इन तीनों ऋचाओं का भावार्थ इस प्रकार है- (क) हे स्त्रीरूपी सोम! तुम पुरूष रूपी सूर्य के प्रकाश से विकास को प्राप्त हो। पुरूष के प्राक्ट्य का कारणभूत जो वीर्य अर्थात् अग्नि सम्बन्धी तेज है, वह तुम में स्थित हो। तुम सभी ओर से अन्न की प्राप्ति में सहायक बनो। (ख) हे सोम! तुम सौम्य गुणों से युक्त हो। तुम्हारा दिव्य रस सूर्य के तेज को प्राप्त करके पुरूष मात्र के लिये अत्यन्त हितकारी हो जाता है। इस दिव्य रस का सेवन करने वाले पुरूषों को पुष्टि दे करके उनके सभी शत्रुओं का पराभव कराने में भी आप पूर्ण सक्षम हैं। वे दुग्ध एवं जल, अन्न से निर्वाह करने वाले निरामिषभोजी जीवों को सुगतमतपूर्वक मिलते रहें। आग्नेय तेज से प्रसन्नता को प्राप्त करते हुये तुम अमृतत्व की प्राप्ति में सहयोगी बनो तथा स्वयं ही स्वर्गलोक में अनुपम यश को स्थिर करो। (ग) 12 आदित्य रूपी पुरूष जिस स्त्री रूपी-प्रकृतिमय सोम को अपने दिव्य तेज से आनंदित करते हैं एवं स्वयं पुष्ट रहते हुये अक्षय बल से सम्पन्न, त्रिलोक को संरक्षण देते हैं, ऐसे राजा वरूण और बृहस्पति हम सभी को उस सोम रूपी अंशु (किरण) से आनंद एवं शक्ति प्रदान करें। (घ) उपर्युक्त तीन ऋचाओं के जप के बाद चन्द्रमा के समक्ष अपना दाहिना हाथ उठाते तथा नीचे लिख मंत्र का उच्चारण करें- *मास्माकं प्राणेन....आदित्यस्यावृतमन्वावर्त इति।* मंत्र का भावार्थ है- हे सोम! तुम हमारे प्राण, संतान एवं पशुओं से स्वयं अपनी तुष्टि न करो; वरन् जो हमसे वैर-भाव रखते हैं तथा जिससे हम द्वेष-भाव रखते हैं, उनके प्राण, संतान और पशुओं से अपनी पुष्टि एवं तुष्टि विराट् पुरूष की इस रूप में उपासना करता है, वह मनुष्य निश्चित ही सदा विजयी रहने वाला, दूसरों से कभी भी न हारने वाला एवं अपने को पराक्रम के द्वारा वश में करने वाला होता है।

स होवाच बालाकिर्य एवैष प्रतिश्रुत्कायां पुरूषस्तमेवाहमुपास इति तं होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्संवादयिष्ठा द्वितीयेऽनपग इति वा अहमेतमुपास इति स यो हैतमेवमुपास्ते विन्दते द्वितीयाद्वितीयवान्भवति।।11।। वे प्रसिद्ध बलाका-पुत्र गार्ग्य फिर बोले- हे ब्रह्मन्! जो यह विराट् पुरूष प्रतिध्वनि में स्थित है, इसकी मैं ब्रह्मरूप से उपासना करता हूँ। इस प्रकार उन गार्ग्य ऋषि से राजा अजातशत्रु ने कहा- हे ब्राह्मन! आप इस संदर्भ में कुछ भी न कहें। यह ''द्वितीय'' एवं ''अनपग'' (एक ध्वनि के पुनरावृत्ति एवं प्रतिध्वनि में गति का अभाव) है। अवश्य ही मैं इसकी इसी भावना के साथ उपासना करता हूँ। ऐसे ही जो भी उपासक इस प्रतिर्ध्वानगत विराट् पुरूष की इस ब्रह्म के रूप में उपासना करता है, वह अपने अतिरिक्त दूसरे अर्थात् स्त्री-पुत्रादि को प्राप्त कर लेता है और सदा द्वितीयवान् रहता है अर्थात् स्त्री-पुत्रादि से वह वियोग को नहीं प्राप्त होता।

जाबालदर्शनोपनिषद् के पृष्ठ 96, पर आया है *कायेन वाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम्। ऋतौ भार्यां सदा स्वस्य ब्रह्मचर्य तदुच्यते।।13।। ब्रह्मभावे मनश्चारं ब्रह्मचर्यं परन्तप।।14।। स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनस गिरा। अनुज्ञा या दया सैव प्रोक्ता वेदान्तवेदिभिः।।15।।* जिसका तात्पर्य है; मन, वचन एवं शरीर के द्वारा स्त्रियों के सहवास का त्याग और ऋतुकाल में मात्र

अपनी ही पत्नी से सम्बन्ध रखना 'ब्रह्मचर्य' कहा गया है या फिर काम-क्रोधादि रिपुओं को कष्ट पहुँचाने वाले मन को पर-ब्रह्मअविनाशी परमात्मा तत्व के ध्यान में लगाये रखना श्रेष्ठ 'ब्रह्मचर्य' है। समस्त भूतप्राणियों को अपनी ही भांति जानकर उनके प्रति मन, वचन और शरीर द्वारा आत्मीयता का अनुभव करना (अर्थात् अपनी ही तरह उनके दुःखों को दूर करने तथा अधिक से अधिक सुख पहुँचाने का प्रयास करना) ही वेदवेत्ता विद्वज्जनों के द्वारा 'दया' बताई गयी है। उसी में, *पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम्। एकरूपं मुने यत्तदार्जवं प्रोच्यते मया।।16।।* पुत्र, मित्र, स्त्री, रिपु एवं स्व-आत्मा में भी सदैव मन का समान भाव रखना ही आर्जव (सरलता) है; ऐसा आया है।

इसी उपनिषद् के पृष्ठ 104, पर आया है *भावतीर्थ परं तीर्थं प्रमाणं सर्वकर्मसु। अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता अन्यथालिङ्ग्यते सुता।।51।।* अपि च *तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्काष्ठादिनिर्मितान्। योगिनो न प्रपूज्यन्ते स्वात्मप्रत्ययकारणात्।।52।।* जिसका तात्पर्य है; भावतीर्थ ही सबसे उत्तम तीर्थ है। पत्नी एवं पुत्री दोनों का ही आलिङ्गन किया जाता है, किन्तु दोनों में भावना का बहुत अधिक अन्तर होता है, पत्नी का आलिङ्गन दूसरे भाव से और पुत्री का आलिङ्गन दूसरे भाव से किया जाता है। योगी मनुष्य अपने आत्मा के तीर्थ में ज्यादा से ज्यादा विश्वास एवं श्रद्धा रखने के कारण जल से पूर्ण तीर्थों एवं काष्ठ आदि से विनिर्मित देव-प्रतिमाओं की शरण नहीं प्राप्त करते।

इसी उपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में प्राप्त होता है *अथ ह जनको ह वैदेहो याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवाच भगवन् संन्यासमनुब्रूहीति। स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वा उत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्।।1।।* जिसका अर्थ हुआ; एक बार विदेहराज जनक ने ऋषि याज्ञवल्क्य के समीप जाकर सविनय यह कहा- हे भगवन्। मुझे संन्यास के सम्बन्ध में बताइये। ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा- सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। उसे समाप्त करके गृहस्थ बनना चाहिये। गृहस्थ बनकर तब वानप्रस्थ (वानप्रस्थी) बनना चाहिये। वानप्रस्थ होकर प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास ग्रहण करना चाहिये। यदि (विषयों से) विरक्ति हो जाये, तो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ किसी भी आश्रम के पश्चात् प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास में प्रवेश किया जा सकता है। इसी प्रकार व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या अस्नातक, स्त्री को मृत्यु हो जाने पर अग्नि ग्रहण करके त्याग किया हो अथवा अग्नि ग्रहण करके संस्कार न किया गया हो, चाहे जो भी स्थिति हो, जब मन विषयों से पूर्ण विरक्त हो जाये, तभी प्रव्रज्या अर्थात् संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये।

नारदपरिव्राजकोपनिषद् के पृष्ठ 129, द्वितीयोपदेश में आया है *भो नारद विधिवदादावनुपनीतोपनयनानंतरं तत्सत्कुलप्रसूतः पितृमातृविधेयः पितृसमीपादन्यत्र सत्संप्रदायस्थं श्रद्धावन्तं सत्कुलभवं श्रोत्रियं शास्त्रवात्सल्यं गुणवंतमकुटिलं सद्गुरुमासाद्य नत्वा यथोपयोगशुश्रुषापूर्वकं स्वाभिमतं विज्ञाप्य द्वादशवर्षसेवापुरः सरं सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा तदनुज्ञया स्वकुलानुरूपामभिमतकन्यां विवाह्य पञ्चविंशतिवत्सरं गुरूकुलवासं कृत्वाथ गुर्वनुज्ञया गृहस्थोचितकर्म कुर्वन्दौर्ब्राह्मण्यनिवृत्तिमेत्य स्ववंशवृद्धिकामः पुत्रमेकमासाद्य गार्हस्थ्योचितपञ्चविंशतिवत्सरं तीर्त्वा ततः पञ्चविंशतिवत्सरपर्यन्तं त्रिषवणमुदकस्पर्शनपूर्वकं चतुर्थकालमेकवारमाहारमाहरन्नयमेक एव वनस्थो भूत्वा पुरग्रामप्राक्तनसंचारं विहाय निकिर विरहिततदाश्रितकर्मोचितकृत्यं दृष्टश्रवणविषयवैतृष्ण्यमेत्य चत्वारिंशत्संकारसम्पन्नः सर्वतो विरक्तश्चित्तशुद्धिमेत्याशासूयेर्ष्याहिंकारं दग्ध्वा साधनचतुष्टयसंपन्नः संन्यस्तुमर्हतीत्युपनिषत्।।11।।* जिसका तात्पर्य है; परिव्राजक का स्वरूप एवं क्रम अत्यधिक रहस्यमय है। उसको तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। माता-पिता की आज्ञा मानने वाले सर्वश्रेष्ठ कुल में प्रादुर्भूत बालक का यदि उपनयन संस्कार न सम्पन्न हुआ हो, तो सर्वप्रथम उस बालक का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार कराना चाहिये। उसके बाद उस बालक को अपने माता-पिता के समीप न रहकर उच्चकुलीन उत्पन्न सद्गुरू के आश्रम में जाकर निवास करना चाहिये। वे महान गुरू श्रोत्रिय शास्त्र के प्रति अनुराग रखने वाले श्रद्धावान् एवं गुणवान हों। उन समर्थ गुरू की सेवा में उपस्थित होकर उनके चरणों में नमन-वन्दन करते हुये उनपर सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् उनकी आज्ञा प्राप्त करके 12 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये गुरू की सेवा-सुश्रुषा करते हुये समस्त विद्याओं का अभ्यास करना चाहिये। अध्ययन पूर्ण हो जाने के बाद कुलानुरूप किसी श्रेष्ठ कन्या से गुरू की आज्ञा प्राप्त करके विवाह करे तथा 25 वर्षों तक गृहस्थाश्रम का पालन करना चाहिये। अपने वंश की अभिवृद्धि हेतु पुत्रोत्पत्ति कर्म पूर्ण करे। गृहस्थ के 25 वर्ष पूर्ण करने के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। इस आश्रम में सतत् परिव्रज्या करते हुये 25 वर्ष तक निवास करे। तीनों सन्ध्याओं में स्नान एवं दिवस के चौथे प्रहर में एक बार भोजन ग्रहण करे। ग्राम या नगर के परिचित मार्गों का

परित्याग करके अकेला ही वन में विचरण करे। बिना जोती-बोई हुई भूमि में उत्पन्न हुये चावल आदि एकत्रित करके उसी से आश्रमानुरूप धर्म का पालन करते हुये दृश्य-श्रव्यादि विषयों से विरक्त होकर चालीस संस्कारों से युक्त होकर चित्त को सर्वतोभावेन सदैव के लिये पवित्र कर ले। आशा, असूया ईर्ष्या, अहंकार आदि का परित्याग करके साधन चतुष्टय से परिपूर्ण हो जाये। इन सभी से युक्त होकर वह सन्यास ग्रहण करने का अधिकारी बन जाता है।

इसी उपनिषद् के तृतीयोपदेश में पृष्ट 130, के अनुसार *षण्ढोऽथ विकलोऽप्यन्धो बालकश्चापि पातकी। पतितश्च परद्वारी वैखानसहरद्विजौ।।3।। चक्री लिङ्गी च पाषण्डी शिपिविष्टोऽप्यनग्निकः। द्वित्रिवारेण संन्यस्तो भूतकाध्यापकोऽपि च। एते नार्हन्ति संन्यासमातुरेण विना क्रमम्।।4।।* नपुंसक, विकलाङ्ग, अन्धे, बालक, पातकी, पतित, परस्त्रीरत, वैखानस, हरद्विज (शिवभक्त), कुचक्र रचने वाले, लिङ्गी (वेषधारी), पाखण्डी, शिपिविष्ट, अयाज्ञिक, वेतनभोगी शिक्षक तथा दो- तीन बार सन्यास ले चुकने वाले ये सभी आतुर संन्यास लेने योग्य हो सकते हैं, क्रमशः सन्यास लेने योग्य नहीं।

इसी उपनिषद् के तृतीयोपदेश में पृष्ट 135, में प्राप्त होता है *अजिह्वः षण्डकः पङ्गुरन्धोः बधिर एव च। मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः।।62।। इदमिष्टमिदं नेति योऽश्नन्नपि न सज्जति। हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते।।63।। अद्यजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम्। शतवर्षा च यो दृष्टा निर्विकारः स षण्डकः।।64।। भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च। योजनान्न परं याति सर्वथा पङ्गुरेव सः।।65।। तिष्ठतो व्रजतो वापि यस्य चक्षुर्न दूरगम्। चतुर्युगां भुवं मुक्त्वा परिव्राट् सोऽन्ध उच्यते।।66।। हिताहितं मनोरामं वचः शोकावहं तु यत्। श्रुत्वापि न शृणोतीव बधिरः स प्रकीर्तितः।।67।। सान्निध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः। सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुग्ध उच्यते।।68।। नटादिप्रेक्षणं द्यूतं प्रमदासुहृदं तथा। भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण्न पश्येत्कदाचन।।69।। रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं मरात्मसु। षडेतानि यतिर्नित्यं मनसापि न चिन्तयेत्।।70।। मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च। दिवा स्वापं च यानं च यतीनां पातनानिषट्।।71।। दूरयात्रां प्रयत्नेन वर्जयेदात्मचिन्तकः। सदोपनिषदं विद्यामभ्यसेन्मुक्तिहैतुकीम्।।72।। न तीर्थसेवी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्।।73।। अपापमशठं वृत्तमजिह्मं नित्यमाचरेत्। इन्द्रियाणि समाहृत्य कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।।74।। क्षीणेन्द्रियमनोवृत्तिर्निराशीर्निष्परिग्रहः। निर्द्वन्द्वो निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च।।75।। निर्ममो निरहंकारो निरपेक्षो निराशिषः। विविक्तदेशसंसयुक्तो मुच्यते नात्र संशय इति।।76।।* जिसका तात्पर्य है; नपुंसक (काम भावना शून्य), अंधे, लूले, बहरे, मुग्ध (जड़) और अजिह्व के समान रहने वाला भिक्षु उपर्युक्त छः गुणों से सम्पन्न होकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जो स्वाद-अस्वाद को न देखकर भोजन ग्रहण करता है और हितकर, मृदु तथा सत्य बोलता है उसे 'अजिह्व' कहा जाता है। जो पुरूष नवजात कन्या, षोडशी युवती और शतवर्षा वृद्धा को देखकर मन में किसी प्रकार का राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होने देता, उसे 'षण्डक' कहते हैं। जो भिक्षु मात्र भिक्षा अथवा मल-मूत्र त्याग के लिये ही भ्रमण करता है तथा एक दिन में एक योजन (चार कोस) से अधिक गमन नहीं करता (शेष समय ध्यानादि करते हुये खड़े होकर व्यतीत करता है) वह पङ्गु ही है। चलते हुये या खड़े होकर जिसकी आंखें चार युग (प्रायः दस हाथ) भूमि की देरी तक ही देखती है, उसे 'अंध' कहते हैं। हित अथवा अहित की तथा सुख अथवा दुःख की बात को जो नहीं सुनता (इस प्रकार की बात सुनकर भी उससे प्रभावित होकर कोई ध्यान नहीं देता), वह 'बधिर' (बहरे के समान) है। विषयों की समीपता, शरीर में सामर्थ्य और इन्द्रियों में स्वस्थता होते हुये भी जो भिक्षु सोये हुये के समान उन विषयों की ओर आकृष्ट नहीं होता, उसे 'मुग्ध' (जड़ या भोला-भाला) कहा गया है। भिक्षु (संन्यासी) को चाहिये कि वह अपने सम्बन्धियों, नटों के खेल, द्यूतक्रीड़ा, युवती स्त्री, भोज्य पदार्थ, रजस्वला स्त्री इन छः की ओर कभी दृष्टिपात न करे। दूसरों के प्रति द्रोह, अपनों के प्रति मोह, मद, माया, और राग-द्वेष इन (दोषों) से सदैव अलग रहे तथा मन में भी इनके प्रति कभी विचार तक न आने दें। मञ्च (कुर्सी आदि), श्वेत वस्त्र, स्त्रीचर्चा, इन्द्रियलोलुपता, दिवा-शयन और सवारी पर यात्रा करना- ये छः (दोष) संन्यासी के लिये पातक रूप है। आत्म चिंतन की कामना करने वाले सन्यासी के लिये उचित है कि वह दूर की यात्रा न करने का प्रयत्न करता रहे और मोक्ष प्रदायिनी उपनिषद् विद्या का सतत् अभ्यास करे। सन्यासी के लिये अधिक तीर्थ सेवन तथा अधिक उपवास उचित नहीं है। अधिक विद्याओं के पठन-पाठन का स्वभाव भी वह न बनाये। सभाओं में व्याख्यान भी न दे और पाप, दुष्टता तथा कुटिलता पूर्ण व्यवहार न करे। जिस प्रकार कछुआ सभी तरफ से अपने अङ्गों को समेट लेता है, उसी प्रकार सन्यासी भी सभी विषयों की ओरसे अपनी इन्द्रियों को समेट ले तथा इन्द्रियों और मन के कार्य-व्यापारों को क्षीण कर दे। कामना और परिग्रह को त्यागकर हर्ष-शोक से विरत हो जाये। वह नमस्कार (देव-स्तुति)

और स्वधा (श्राद्ध-तर्पण) को भी त्याग दे। वह ममता और अहंकार से शून्य होकर किसी भी वस्तु की अपेक्षा न करे। सदैव एकान्तवास करे। इस प्रकार उपर्यक्त ढंग से जीवनयापन करने से वह संसार के बंधन से मुक्त हो जाता है।

अप्रमत्तः कर्मभक्तिज्ञानसम्पन्नः स्वतंत्रो वैराग्यमेत्य ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा मुख्यवृत्तिका च ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेद्गृहाद्वनी भूत्वा प्रव्रजेद्यादि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वाऽथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टि कुर्वन्त्यथवा न कुर्यादाग्न्येय्यामेव कुर्यादग्निर्हि प्राणः प्राणमेवैतया करोति तस्मात्त्रैधातवीयामेव कुर्यादेतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति।।77।। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्र आरोहाथानो वर्धया रयिम्।।78।। इत्यनेन मंत्रेणाग्निमाजिघ्रेदेष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाहवनीयादग्निमाहृत्य पूर्ववदग्निमाजिघ्रेद्यदग्निं न विन्देदप्सु जुहुयादापो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमी स्वाहेति हुत्वोद्धृत्यो तदुदकं प्राश्नयात्साज्यं हविरनामयं मोदमिति शिखां यज्ञोपवीतं पितरं पुत्रं कलत्रं कर्म चाध्ययनं मंत्रान्तरंविसृज्यैव परिव्रजत्यात्मविन्मोक्षमंत्रैधातवीयैर्विधेस्तद्ब्रह्म तदुपासितव्यमेवैतदिति।।79।। कोई भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ अथवा वानप्रस्थी जो ज्ञान, कर्म और भक्ति से युक्त है तथा प्रमाद रहित होकर आत्मा के अधीन रहता है, उसे यदि वैराग्य उत्पन्न हो जाये, तो वह सन्यास ग्रहण कर सकता है। यदि वैराग्य परिपक्व न हुआ हो, तो क्रमशः ब्रह्मचर्याश्रम की अवधि पूरी करके गृहस्थ में प्रविष्ट हो, उसके बाद वानप्रस्थ आश्रम में जाये और उसकी भी अवधि पूर्ण करके सन्यास ग्रहण करे। यदि वैराग्य तीव्र हो जाये, तो ब्रह्मचर्याश्रम के बाद सीधे ही सन्यास ग्रहण कर ले। गृहस्थाश्रम अथवा वानप्रस्थाश्रम में यदि तीव्र वैराग्य हो जाये, तो उसके बाद भी सीधे सन्यास ग्रहण किया जा सकता है। ब्रह्मचारी-अब्रह्मचारी, स्नातक-अस्नातक, अग्निहोत्री-अ-अग्निहोत्री (अग्निहोत्र का त्याग कर चुकने वाला कोई भी हो), जब उसे तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो जाये, तभी गृह-त्याग करके सन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। सन्यास आश्रम में प्रविष्ट होते समय कुछ विद्वान प्राजापत्य इष्टि सम्पन्न करते हैं (तीव्र वैराग्य होने पर) उसे भी करना आवश्यक नहीं है अथवा केवल आग्नेयी इष्टि ही सम्पन्न करे। अग्नि ही प्राण है, इस इष्टि से साधक प्राण का ही पोषण करता है अथवा त्रैधातवी (जो इन्द्र से सम्बन्धित है) इष्टि ही सम्पन्न करे। सत्व, रज और तम ये तीन ही धातुयें हैं। इस इष्टि द्वारा साधक इन्हीं तीनों का हवन करता है। विधिवत् इष्टि 'अर्थ ते योनिः' इस मंत्र से अग्नि को सूँघे। मंत्रार्थ इस प्रकार है- हे अग्निदेव! यह समष्टिगत प्राण ही तुम्हारी उत्पत्ति का मूल है। इसी कारण तुम उत्तम क्रांति से सुशोभित हो रहे हो। तुम अपने उत्पादक प्राण को जानकर इसमें विराजो। इस प्रकार हमारे प्राण में प्रतिष्ठित होकर हमारे ज्ञान-धन को समृद्ध करो। निश्चय ही यह प्राणतत्व अग्नि के प्राकट्य हेतु है। अतः इस कारण मंत्र में अग्नि एवं प्राण की एकात्मकता सिद्ध हुई है। आहवनीय अग्नि में से अग्नि प्राप्त कर उपर्युक्त तरीके से इष्टि करके अग्नि का अवघ्राण करे। यदि किसी कारणवश अग्नि प्राप्त न हो सके, तो जल में ही यजन कृत्य पूर्ण कर लेना चाहिये। अवश्य ही समस्त देवगण जलरूप हैं। समस्त देवों के लिये मैं यजन-कृत्य कर रहा हूँ, यह छवि उन देवों को प्राप्त हो (ऐसा भाव करना चाहिये)। उसके बाद उस जल-राशि में से थोड़ा सा जल लेकर उससे आचमन कर लेना चाहिये। वह घृत मिश्रित जल आरोग्यप्रद एवं मोक्षप्रदाता होता है। तदनंतर शिखा (चोटी), यज्ञोपवीत, पिता, पुत्र, स्त्री, कर्म अध्ययन-अध्यापन तथा अन्याय विभिन्न तरह के मंत्रों का परित्याग कर देने वाला ही आत्मवेत्ता मनुष्य परिव्राजक होता है। त्रैधातवीय मोक्ष से सम्बन्धित मंत्रों से ब्रह्म को जानना चाहिये। जो शाश्वत सत्य एवं ज्ञान आदि श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न है, वही परब्रह्म परमेश्वर है, वही उपासना के अनुकूल है। उसी की ही उपासना करनी चाहिये। यह ठीक इसी प्रकार ही है।

तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः परिव्रज्य परिव्राडेकशाटी मुण्डकोऽपरिग्रहः शरीरक्लेशासहिष्णुश्चेदथवा यथाविधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा सपुत्रमित्रकलत्राप्तबन्ध्वादीनि स्वाध्यायं सर्वकर्मणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च सर्व कौपीनं दण्डमाच्छादनं च त्यक्तव द्वन्द्वसहिष्णुर्न शीतं न चोष्णं न सुखं न दुःखं न निद्रा न मानावमाने च षडूर्मिवर्जितो निन्दाहंकारमत्सरगर्वदम्भेर्ष्यासूयेच्छाद्वेषसुखदुःखकामक्रोधलीभमोहादीन्विसुः य स्ववपुः शवाकारमिव स्मृत्वा स्वव्यतिरिक्तं सर्वमन्तर्बहिरमन्यमानः कस्यापि वन्दनमकृत्वा न नमस्कारो न स्वाहाकारो न स्वधाकारो न निन्दास्तुतिर्यादृच्छिको भवेद्यदृच्छालाभसंतुष्टः सुवर्णादीन्न परिग्रहेन्नावाहनं न सिर्जनं न मन्त्रं नामंत्रं न ध्यानं नोपासनं न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक् नापृथक् न त्वन्यत्र सर्वत्रानिकेतः स्थिरमतिः शून्यागारवृक्षमूलदेवगृहतृणकूटकुलालशालाग्निहोत्रशालाग्निदिगन्तरनदीतटपुलिनभूगृहकंदरनिर्झरस्थण्डिलेषु वने वा श्वेतकेतुऋभुनिदाघऋभदुर्वासः संवर्तकदत्तात्रेयरैवतकवदव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारो बालोन्मत्तपिशाचवदनुन्मत्तोन्मत्तवदाचरंस्त्रिदण्डं शिक्यं पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्व भूः

स्वाहेत्यप्सु परित्यज्य।।90।। अर्थात्; इस प्रकार से ब्राह्मण उपर्युक्त, सभी नियमोपनियम जानकर घर का परित्याग करके सन्यासी हो जाये, मात्र एक ही वस्त्रधारण करे, सिर के बालों का मुण्डन करा ले ताकि किसी तरह की वस्तुओं, पदार्थों आदि का संग्रह न करे। यदि वह शारीरिक क्लेशों को सहने में सक्षम न हो, तो उसे कौपीन (लँगोटी) धारण कर लेनी चाहिये और यदि शारीरिक क्लेशों-परेशानियों को सहने में समर्थ हो, तो विधिवत् सन्यास धर्म को ग्रहण कर वस्त्र रहित हो, जीवन-यापन करे। (वह) अपने मित्र, पुत्र, स्त्री, श्रेष्ठ गुरूजन एवं बन्धु-बान्धव, भाई आदि को त्यागकर विचरण करे। स्वाध्याय तथा वैदिक कर्मों के अनुष्ठान को छोड़कर सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड के साथ अपना सम्बन्ध परित्याग कर दे। अपने पास कौपीन, दण्ड एवं अङ्गाच्छादन हेतु वस्त्रादि ही रखे। सभी तरह के द्वंद्वों को पूर्णरूपेण सहन करते हुये सर्दी-गर्मी आदि पर ध्यान न दे; न कभी सुख की इच्छा करे और न ही कभी दुःख आदि द्वंद्वों से परेशान हो। निद्रा की भी चिन्ता न करे। मान-अपमान में सदैव सम-भाव से रहे। छहों प्रकार की ऊर्मियों से वह कभी भी प्रभावित न हो। निन्दा, मत्सर (डाह), अहंकार, गर्व, दम्भ, ईर्ष्या, दोष-दृष्टि, इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का परित्याग कर अपने शरीर को मृतवत् मानकर, आत्मा के अलावा दूसरी अन्य किसी भी वस्तु को बाह्य एवं अन्तः से स्वीकार न करते हुये कभी भी किसी के समक्ष सिर न झुकाये और न ही यज्ञ एवं श्रद्धादि करे, किसी की निन्दा एवं स्तुति (अनुनय-विनय) आदि भी न करे। एकाकी ही स्वच्छन्द सर्वत्र विचरण करता रहे। ईश्वर की इच्छा से जो कुछ भी भोजन आदि मिले, उस पर ही संतोष रखे। स्वर्णाभूषण आदि रत्नों का कभी भी अपने पास संग्रह न करे। न कभी किसी का आवाहन करे और न ही कभी विसर्जन। मंत्रादि का न तो प्रयोग करे और न ही उसका त्याग करे। ध्यान एवं उपासानादि भी न करे। न कोई उसका लक्ष्य हो तथा लक्ष्यहीनता भी नहीं होनी चाहिये। न कभी किसी से अलग रहे और न ही कभी किसी के साथ। न कभी किसी एक स्थान पर निवास करने का आग्रह करे और न ही किसी दूसरी जगह जाने का अनुरोध करे। उस ब्राह्मण का अपना निज का कोई आश्रम अथवा घर आदि भी नहीं होना चाहिये। उसकी बुद्धि सदैव स्थिर रहनी चाहिये। परिजनों से रहित जीवन, वृक्ष की जड़, मन्दिर, पर्णकुटी, कुलालशाला, अग्निहोत्रशाला, अग्निदिगन्तर (आग्नेयदिशा), नदी का किनारा, कछार, भू-गृह अर्थात् गुफा, पर्वतीय गुफा, झरने के समीप चबूतरे या वेदी या फिर जंगल में निवास करे। ऋतु, श्वेतकेतु, निदाध, ऋषि, संवर्तक, दुर्वासा, दत्तात्रेय एवं रैवतक की भांति न कोई चिह्न स्वीकार करे और न ही अपने आचरण को ही किसी पर प्रत्यक्ष तप से प्रकट होने दे। उनमत्त बालक अथवा पिशाच की तरह से व्यवहार करे। उन्मत्त न होते हुये भी उन्मत्त की तरह से आचरण करे। त्रिदण्ड, पात्र, झोली, कमण्डलु, कटिसूत्र एवं कौपीन आदि सभी कुछ ''भूः स्वाहा'' कहकर के जल में विसर्जित कर दे।

चतुर्थोपदेश, पृष्ठ संख्या 140 में (सन्यास-धर्म के पालन का महत्व एवं सन्यास-धर्म को धारण करने की शास्त्रीय विधि) आया है *त्यक्तवा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च। आत्मन्येव स्थितोयस्तु स याति परमां गतिम्।।1।। नामगोत्रादिवरणं देशं कालं श्रुतं कुलम्। वयो वृत्तं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः।।2।। न संभाषेत्स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्। कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि।।3।। एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः। चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति।।4।। तृष्णा क्रोधोऽनृतं माया लोभमोहौ प्रियाप्रिये। शिल्पं व्याख्यानयोगश्च कामो रागपरिग्रहः।।5।। अहंकारो ममत्वं च चिकित्सा धर्मसाहसम्। प्रायश्चित्तं प्रवासश्च मंत्रौषधपराशिषः। प्रतिषिद्धानि चैतानि सेवमानो व्रजेदधः।।6।। आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सृहृदोऽपि वा। सम्माननं च न ब्रूयान्मुनिर्मोक्षपरायणः।।7।। प्रतिग्रहं न गृह्णीयान्नैव चान्यं प्रदापयेत्। प्रेरयेद्वा शोकहर्षौ त्यजेद्यतिः।।9।। अहिंसा सत्य-मस्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः। अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्जवम्।।10।। अस्नेहो गुरूशुश्रूषा श्रद्धा क्षान्तिर्दमः शमः। उपेक्षा धैर्य-माधुर्ये तितिक्षा करूणा तथा।।11।। ह्रीस्तथा ज्ञानविज्ञाने योगो लघ्वशनं धृतिः। एष स्वधर्मा विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम्।।12।।* जिसका तात्पर्य है; जो ज्ञानी मनुष्य लोक, वेद, विषय-वासनाओं के भोग एवं समस्त इन्द्रियों की अधीनता का परित्याग करके एक मात्र अपने आत्मा के उत्थान में सतत् स्थिर रहता है, वही परिव्राजक (सन्यासी) श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है। उत्तम परिव्राजक नाम, गोत्र आदि के वरण, देश, काल, शास्त्रीय ज्ञान, कुल, अवस्था, आचार, व्रत-उपवास एवं शील आदि का प्रकाशन (प्रचार-प्रसार) कदापि न करे। (वह) किसी भी स्त्री से वार्तालाप कभी न करे। पूर्व में देखी हुई किसी भी परिचित स्त्री का अपने मन में स्मरण तक भी न करे, उन स्त्रियों की चर्चा से सदैव दूर रहे और उनके चित्र आदि को भी कभी न देखे। भाषण-सम्भाषण, स्मरण, चर्चा एवं चित्रों को देखना, स्त्रियों से सम्बन्धित इन चार तरह की बातों का जो (मनुष्य)

मोह के वश हुआ आचरण करता है, निश्चय ही उसके चित्त में विकार उत्पन्न हो जाते हैं और उन विकारों से उसका धर्म अवश्य ही नष्ट हो जाता है। सन्यासियों के लिये आसक्ति, क्रोध, झूठ, माया, मोह, लोभ, प्रिय, अप्रिय, शिल्पकला, व्याख्यान करना, कामना, राग, संग्रह, अहंकार, पर-गृह निवास, चिकित्सा का व्यवसाय, ममता, धर्म के लिये साहसिक कार्य, मंत्र प्रयोग, औषधि-वितरण, जहर देना, आशीर्वाद देना आदि ये सभी कार्य वर्जित हैं। इनका उपयोग करने वाला परिव्राजक अपने धर्म (लक्ष्य) से गिर जाता है। मोक्ष धर्म में सतत् संलग्न रहने वाला ज्ञानी सन्यासी अपने किसी हितैषी (शुभचिंतक) के लिये भी आओ, जाओ, रूको आदि स्वागत एवं सम्मान की बात कभी न करे। स्वप्न में भी कभी किसी के द्वारा दिया हुआ दान स्वीकार न करे। दूसरे अन्य किसी को भी न दिलवाये और न खुद ही किसी को देने-लेने के लिये बाध्य करे। स्त्री-पुरूष आदि भी आत्मीय स्वजनों के शुभ अथवा अशुभ समाचारों को सुनकर- देखकर कभी भी अपने लक्ष्य से विचलित न हो, दुःख-सुख को सदैव के लिये त्याग दे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, इन्द्रिय-निग्रह, अपरिग्रह (आदि का पालन करना), उद्दण्डता के भाव से रहित होना, किसी व्यक्ति विशेष के समक्ष दीन-हीन न होना, प्रसन्नता, स्थिरता, सरलता, अस्नेह (किसी से अत्यधिक लगाव न रखना), गुरू की सेवा-शुश्रूषा करना, श्रद्धा, क्षमा, इन्द्रियों का संयम, मन का निग्रह, सभी प्रियजनों के प्रति उदासीनता का भाव, धीरता, मृदुलता, सहनशीलता, करुणा, लज्जा, ज्ञान-विज्ञान-परायणता, स्वल्प आहार एवं धृति (धैर्य), ये सभी मन को वश में रखने वाले परिव्राजकों (सन्यासियों) के श्रेष्ठ प्रख्यात धर्म हैं।

पञ्चमोपदेश के पृष्ठ संख्या 147 में आया है *सन्यासभेदैराचारभेदः कथमिति चेत्तत्वतस्त्वेक एव सन्यासः अज्ञानेनाशक्तिवशात्कमलोपतश्च त्रैविध्यमेत्य वैराग्यसन्यासो ज्ञानसन्यासो ज्ञानवैराग्यसन्यासः कर्मसन्यासश्चेति चातुर्विध्यमुपागतः।।2।। तद्यथेति दुष्टमदनाभावाच्चेति विषयवैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मवशात्सन्यस्तः स वैराग्यसन्यासी।।3।। शास्त्रज्ञानात्पाप पुण्यलोकानुभवश्रवणात्प्रपञ्चोपरतः क्रोधेर्ष्यासूयाहङ्काराभिमानात्मकसर्वसंसारं निर्वृत्य दारेषणाधनेषणालोकेषणात्मकदेहवासनां शास्त्रवासनां लोकवासनां त्यक्तवा वमनान्नमिव प्रकृतीयं सर्वमिदं हेयं मत्वा साधनचतुष्टयसम्पन्नो यः सन्यस्यति स एव ज्ञानसन्यासी।।4।। क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रवशिष्टः सन्यास्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंयासी।।5।। ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भूत्वा वानप्रस्थाश्रममेत्य वैराग्यभावेऽप्याश्रमक्रमानुसारेण यः सन्यस्यति स कर्मसन्यासी।।6।। ब्रह्मचर्येण सन्यस्य सन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्यसन्यासी। विद्वत्सन्यासी ज्ञानसन्यासी विविदिषासन्यासी कर्मसन्यासी।।7।।* जिसका अर्थ है; ब्रह्माजी ने कहा, ''हे नारद! सन्यास के भेद से आचरण के भेद में क्या अंतर पड़ता है, यह मैं तुम्हें बतलाता हूँ, ध्यान से सुनो। वास्तव में सन्यास एक ही प्रकार का है; किन्तु ज्ञानरहित होने के कारण, असमर्थतावश तथा कर्मलोप के कारण तीन भेदों में बँटकर वैराग्य-सन्यास, ज्ञान-वैराग्य-सन्यास तथा कर्म-सन्यास; इन 3 भेदों को प्राप्त होता है। जो मन में दूषित भावनाओं का अभाव होने पर विषय वासनाओं में आसक्त न होकर पूर्व जन्म के पुण्य कर्म के प्रभाव से सन्यास ग्रहण कर लेता है, वह वैराग्य सन्यास कहलाता है। जो मनुष्य शास्त्रों की जानकारी प्राप्त करने से तथा पापरूप और पुण्यरूप लोकों का अनुभव तथा श्रवण करने के कारण प्रपंचादि से स्वभावतः विरक्त हो गया है; क्रोध, ईर्ष्या, असूया (दृष्टिकोष), अहंकार त्तथा अभिमान ही जिसके प्रत्यक्ष स्वरूप हैं, ऐसे इस सम्पूर्ण जगत् को अपने मन से रहित करके स्त्री कामना, धन कामना तथा लोक में प्रसिद्धि की कामना आदि त्रिविध रूपों वाली दैहिक-वासना, शास्त्र-वासना एवं लोक-वासना का परित्याग कर देता है और जैसे सामान्यजन वमन किए हुये भोजन को त्याज्य समभते हैं, वैसे ही इन सभी तरह के भोगों को त्याज्य मानते हुये जो व्यक्ति साधन-चतुष्टय से युक्त हो, वही सन्यास ग्रहण करता है, वही ज्ञान सन्यासी कहलाने का अधिकारी होता है। जो मनुष्य क्रमानुसार (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आदि का) अभ्यास करता हुआ, सभी कुछ अनुभव में लाकर, ज्ञान तथा वैराग्य के द्वारा निरन्तर अपने ही स्वरूप-मात्र का ध्यान करता हुआ जातरूपधर (बालकवत् निश्छल) हो जाता है, वही ज्ञान-वैराग्य-सन्यासी कहलाता है। जो ब्रह्मचर्य धर्म को पूर्ण करके गृहस्थ होकर एवं गृहस्थ से वानप्रस्थ-धर्म में प्रविष्ट होकर पूर्ण वैराग्य न होने पर भी आश्रम-क्रमानुसार सबसे बाद में जो सन्यास ग्रहण करता है, वही कर्म-सन्यासी है अथवा ब्रह्मचर्य के पश्चात् ही सन्यास ग्रहण कर सन्यास-धर्म से जो जातरूपधर हो जाता है, वही वैराग्य सन्यासी कहलाता है। विद्वान् सन्यासी ही ज्ञान सन्यासी है और विविदिषा सन्यासी ही कर्म सन्यासी बतलाया गया है।

इसी उपदेश (मंत्र संख्या 20) में आया है *परमहंसादित्रयाणां न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रं न कमण्डलु र्नदण्डः। सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं जातरूपधरत्वं विधिः। सन्यासकालेऽप्यलंबुद्धिपर्यन्तमधीत्य तदनन्तरंकटिसूत्रं कौपीनं दण्डं वस्त्रं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेन्न कन्धावेशो नाध्येतब्यो न वक्तव्य न श्रोतव्यमन्यत्किंचित्प्रणवादन्यं न तर्कं पठेन्न शब्दमपि बृहच्छब्दान्नाध्यापयेन्न महद्वाच विग्लापनं गिरा पाण्यादिना सम्भाषणं नान्यस्माद्वा विशेषेण न शूद्रस्त्रीपतितोदक्या सम्भाषर्ण न यतेर्देवपूजा नोत्सवदर्शनं तीर्थयात्रावृत्तिः।।20।।* अर्थात्; परमहंस, तुरीयातीत एवं अवधूत सन्यासियों के लिये कटिसूत्र, कौपीन-दण्ड, कमण्डलु एवं वस्त्र धारण करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। वे जातरूपधर रहकर समस्त वर्ण-जाति के घरों से भिक्षा याचना के लिये स्वतंत्र हैं। सन्यास-धर्म स्वीकार करने के समय ''मैंने जितना भी कुछ अध्ययन किया है, अपने आप में पर्याप्त है'', इस तरह का दृढ़-निश्चय जब तक न हो जाये, तब तक अध्ययन करते रहना चाहिये उसके बाद कौपीन, कटिसूत्र आदि को जल में विसर्जित कर देना चाहिये। यदि वह दिगम्बर (वस्त्र से रहित तो फिर वह कन्था (कथरी) आदि अपने पास न रखे, पठन-पाठन न करे, प्रवचन, कथा-स्तुति आदि न करे तथा उसे व्याख्यान आदि भी नहीं देना चाहिये। तर्कशास्त्र एवं शब्दशास्त्र आदि कुछ भी पढ़ने की विशेष आवश्यकता नहीं है। उसे मात्र प्रणव रूपी ॐकार का ही जप करना चाहिये। वाणी का व्यर्थ अपव्यय करना वर्जित है। संकेत मात्र से बात करना भी निषिद्ध है। वह शूद्र, पदच्युत एवं स्त्री से बात बिल्कुल न करे। रजस्वला स्त्री से तो भूलकर भी बात न करे। विशेष उत्सव समारोह-पूजा आदि देखना, तीर्थ...करना या देवताओं का पूजन-अर्जन आदि भी यति के लिये आवश्यक नहीं है।)

परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् के पृष्ठ संख्या 189 में *सद्गुरूसमीपे सकलविद्यापरिश्रमज्ञो भूत्वा विद्वान्सर्वमैहिकामुष्मिकसुखश्रमं ज्ञात्वैषणात्रयवासनात्रयममत्वाहंकारादिकं वमनान्नमिव हेयमधिगम्य मोक्षमार्गैकसाधनो ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत्। गृहद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदिति बुद्ध्वा सर्वसंसारेषु विरक्तो ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो वा पितरं मातरं कलत्रपुत्रमाप्तबन्धुवर्ग तदभावे शिष्यं सहवासिनं वाऽनुमोदयित्वा तद्धैके प्राजापत्यामेवेष्टिं कुर्वन्ति। तदु तथा न कुर्यात्। आग्नेय्यामेव कुर्यात्। अग्निर्हि प्राणः प्राणमेवैतया करोति। त्रधातवीयामेव कुर्यात्। एतयैव त्रयो धातवो यदुत सत्त्वं रजस्तम इति। अयं ये योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः। तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिमित्यनेन मंत्रेणाग्निमाजिघ्रेत्। एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहेत्येवमेवैतदाह। ग्रामाच्छ्रोत्रियागारादग्निमाहृत्य स्वविध्युक्तक्रमेण पूर्ववदग्निमाजिघ्रेत्। यद्यातुरो वाग्निं न विन्देदप्सु जुहुयात्। आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहेति हुत्वोद्धृत्य प्राश्नीयात् साज्यं हविरनामयम्। एष विधिर्वीराध्वाने वाऽनाशके वापां प्रवेशे वाऽग्निप्रवेशे वा महाप्रस्थाने वा। यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा सन्यसेदेष पन्थाः।।2।।* ऐसा प्राप्त होता है, जिसका तात्पर्य है; सद्गुरू के समीप परिश्रमपूर्वक समस्त विद्याओं का ज्ञाता होकर वह विद्वान् इहलौकिक और पारलौकिक सुखों को श्रम स्वरूप (श्रमसाध्य) जानकर एषणात्रय (पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा), वासनात्रय (देह, मन और बुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार), ममत्व और अहंकारादि को वमन किए (उगले हुए) अन्न के समान हेय समझ कर मोक्षपथ के एकमात्र साधन ब्रह्मचर्य को पूरा करके (अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के बाद) गृहस्थ बने। गृहस्थ धर्म के पालप के बाद वनी (वानप्रस्थी) बने, तब परिव्राजक सन्यासी बने। (यह सामान्य अनुशासन है) इसके अतिरिक्त विशेष संदर्भों में किसी भी आश्रम-ब्रह्मचर्याश्रम से अथवा गृहस्थाश्रम से या वानप्रस्थाश्रम से भी प्रव्रज्या में प्रवेश कर सकता हैं अतः व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या अस्नातक, अग्निहोत्र करने वाला हो अथवा न हो, जब भी विरक्ति उत्पन्न हो जाए, तभी सन्यास ग्रहण करके परिव्राजक हो जाना चाहिये। संसार से सभी प्रकार से विरक्त ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी अपने माता-पिता, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी, बन्धुओं और उनके अभाव में शिष्यों अथवा साथ में रहने वालों से सम्मति लेकर प्राजापत्य इष्टि (यज्ञ) करते हैं, उन्हें वैसा नहीं करना चाहिये। आग्नेयी इष्टि ही करनी चाहिए। अग्नि ही प्राण है। इसके (अग्नि) द्वारा ही प्राण क्रिया करता है- ऐसा भाव करते हुए त्रैधातवी (इष्टि) करे। सत्त्व, रज और तम ये ही त्रिधातु हैं। इसके पश्चात् इस मंत्र से अग्नि को सूँघे 'हे अग्निदेव! यह प्राण आपका कारण रूप है, यह जानते हुये आप इसमें प्रवेश करें। आप प्राण से उद्भुत हैं, इसलिये आप हमें प्रकाश और वृद्धि प्रदान करें।' हे अग्निदेव! आप अपने योनि स्थल (प्राण) में प्रविष्ट हों, अपने उत्पत्ति स्थल में गमन करें। 'स्वाहा' इस प्रकार ऐसा कहा गया है। ग्राम के श्रोत्रिय के घर से अग्नि लाकर पूर्वोक्त विधि से अग्नि को सूँघे। यदि आतुरतापूर्ण भाव हो और अग्नि उपलब्ध न हो, तो जल में ही हवन करे। 'आपः' (जल) ही समस्त देवताओं का स्वरूप

है 'समस्त देवताओं के निमित्त हवन कर रहा हूँ' ऐसा भाव करते हुए स्वाहा आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् हवन किये हुए पदार्थ को उठाकर, घृत सहित हवि को ग्रहण (भक्षण) करे। इस विधि का प्रयोग वीर मार्ग में अथवा अनशन द्वारा शरीर छोड़ने के क्रम में अथवा जल प्रवेश में अथवा अग्नि प्रवेश में अथवा महाप्रस्थान में किया जाता है। यदि आतुरता हो, तो मन अथवा वाणी से सन्यास की विधि सम्पन्न कर लेनी चाहिये, यही मार्ग है।

इसी उपनिषद् के पृष्ठ संख्या 191 में आया है *तदधिकारी न भवेद्यदि गृहस्थप्रार्थनापूर्वकमभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्व प्रवर्तते सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य व्रजोऽसि शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारयेत्यनेन मंत्रेण प्रणवपूर्वकं सलक्षणं वैणवं दण्डं कटिसूत्रं कौपीनं कमण्डलुं विवर्णस्त्रमेकं परिगृह्य सद्गुरूमुवगम्य नत्वा गुरूमुखात्तत्त्वमसीति महावाक्यं प्रणवपूर्वकमुपलभ्याथ जीर्ण वल्कलाजिनं धृत्वाथ जलावतरणमूर्ध्वगमनमेकभिक्षां परित्यज्य त्रिकालस्नानमाचरन्वेदान्तश्रवणपूर्वकं प्रणवानुष्ठानं कुर्वन्ब्रह्ममार्गे सम्यक्सम्पन्नः स्वाभिमतमात्मनि गोपयित्वा निर्ममोऽध्यात्मनिष्ठः कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यदम्भदर्पाहंकारासूयागर्वेच्छाद्वेषहर्षा मर्षम-मत्वादींश्च हित्वा ज्ञानवैराग्ययुक्तो वित्तस्त्रीपराङ्गमुखः शुद्धमानसः सर्वोपनिषदर्थमा लोच्य ब्रह्मचर्यापरिग्रहाहिंसासत्यं यत्नेन रक्षञ्जितेन्द्रियो बहिरन्तः स्नेहवर्जितः शरीरसंधारणार्थ चतुर्षु वर्णेष्वभिशस्तपतितवर्जितेषु पशुरद्रोही भैक्षमाणो ब्रूह्मभूयाय भवति।।3-ख।।* जिसका तात्पर्य है; यदि इस विधि का अधिकारी न हो-अर्थात् दिगम्बर वृत्ति न अपना सके, तो दूसरी विधि कहते हैं। वह गृहस्थ प्रार्थना पूर्वक समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करे। कहे- हे सखा! तुम मेरे बल का रक्षण करो। तुम वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र के वज्र हो, मेरे लिये शान्ति प्रदायक हो, मुझे पापों से मुक्त करो, इस मंत्र का प्रणवपूर्वक उच्चारण करके, श्रेष्ठ लक्षण युक्त (दोषमुक्त) बांस के दण्ड, कटिसूत्र, कौपीन, कमण्डलु और एक गेरूआ वस्त्र को धारण करके सद्गुरू के निकट जाकर प्रणाम करे और उन (गुरूदेव) से प्रणवपूर्वक 'तत्वमसि' महावाक्य को प्राप्त करे (श्रवण करे)। इसके उपरान्त जीर्ण वल्कल अथवा मृगचर्म धारण करके जल में उतरना, ऊपर चढ़ना तथा एक ही (घर की) भिक्षा का परित्याग करके (अर्थात् कई घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा लेकर), त्रिकाल (प्रातः मध्याह्न और सायं) स्नान के नियम का आचरण करते हुये वेदान्त दर्शन का श्रवण और प्रणव (ॐकार) का अनुष्ठान सम्पन्न करे। ब्रह्म मार्ग में विस्तृत (सम्यक्) ज्ञान प्राप्त करके, अपने मत (भावनाओं) को आत्मा (मन) में छिपाकर रखते हुये अपने को ममतारहित और अध्यात्मनिष्ठ बनाए। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, दम्भ, दर्प, अहंकार, असूया, गर्व, इच्छा, द्वेष, अमर्ष,ममत्व आदि का परित्याग करके, ज्ञान वैराग्य से युक्त होकर कंचर और कामिनी से पराङ्गमुख होकर, शुद्ध मन से समस्त उपनिषदों की समालोचना करके ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, सत्य आदि की यत्नपूर्वक रक्षा करते हुये जितेन्द्रिय बने। बाह्याभ्यन्तर से रागरहित होकर शरीर रक्षण के लिये चारो वर्णों में पतितों (अनुशासनों से गिरे हुए) को छोड़कर किसी वर्ण के सदाचारी गृहस्थों से भी उसी प्रकार निवैर होकर भिक्षा ग्रहण कर ले, जैसे पशु बिना भेद-भाव के आहार ग्रहण करता है। ऐसा करने वाला सब में ब्रह्म भाव रखता है।

सर्वेषु कालेषु लाभालाभौ समौ कृत्वा करपात्रमाधूकरेणान्नमश्नन्मेदोववृद्धिमकुर्वन्कृशीभूत्वा ब्रह्माहमस्मीति भावयन्गुर्वर्थं ग्राममुपेत्य ध्रुवशीलोऽष्टौ मास्येकाकी चरेद्द्वावेवाचरेत्। यदालंबुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्तन्मंत्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलुं सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेत्। ग्राम एकरात्रं तीर्थे त्रिरात्रं पत्तने पंचरात्रं क्षेत्रे सप्तरात्रमनिकेतः स्थिरमतिरग्निसेवी निर्विकारो नियमानियममुत्सृज्य प्राणसंधारणार्थमयमेव लाभालाभौ समौ कृत्वा गोवृत्त्या भैक्षमाचरन्नुदकस्थलकमण्डलुरबाधकरहस्यस्थलवासो न पुनर्लाभालाभरतः शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः सर्वत्र भूतलशयनः क्षौरकर्म-परित्यक्तो मुक्तचातुर्मास्यव्रतनियमः शुक्लध्यानपरायणोऽर्थस्त्रीपुरपराङ्गमुखोऽनुन्मत्तोऽप्युन्मत्तवदाचरन्नव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारो दिवान-नक्तसमत्वेनास्वप्नः स्वरूपानुसंधानब्रह्मप्रणवध्यानमार्गेणावहितः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसपरिव्राजको भवति।।3-ग।। अर्थात् समस्त कालों में लाभ-हानि को समान मानता हुआ हाथ (करपात्र) में ही अल्प भिक्षा ग्रहण करे। शरीर मोटा न करके कृशकाय होकर, मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा भाव करते हुये आठ महीने तक गुरू के निमित्त अडिग होकर भिक्षाशील होकर एकाकी विचरण करे। जब सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो जाए, तब कुटीचक्र अथवा बहूदक अथवा हंस अथवा परमहंस होकर मंत्रपूर्वक कटिसूत्र, कौपीन, दण्ड और कमण्डलु आदि सभी को जल में विसर्जित करके जातरूपधर (शिशुवत् निर्लिप्त) होकर विचरण करे। (विचरण के अन्तराल में) ग्राम में एक रात्रि, तीर्थ में तीन रात्रि, नगर में पांच रात्रि और क्षेत्र में सात रात्रि तक निवास करता हुआ वह अनिकेत (घर रहित), स्थिर बुद्धि, निरग्निसेवी (अग्नि का सेवन न करने वाला), निर्विकार, नियम-अनियम का परित्याग करने वाला, लाभ और हानि को समान समझने वाला, मात्र प्राण धारण के लिये गोवृत्ति से भिक्षा ग्रहण करने वाला

हो। जलस्थल (जलाशय) को ही वह कमण्डलु माने और अबाध (बाधा रहित एकान्त) स्थान में ही रहे। लाभ-हानि के विचार में रत न हो, सर्वत्र भूतल पर शयन करे, क्षौर कर्म (हजामत का कार्य) त्याग दे। चातुर्मास्य आदि व्रतों के नियमों से मुक्त रहे और मात्र शुक्ल (सात्त्विक) ध्यान परायण रहे। धन-सम्पदा, स्त्री और नगर से पराङ्मुख रहे और ज्ञान-सम्पन्न होने पर भी प्रत्यक्षतः उन्मत्त की तरह रहे। अपने लिङ्ग और आचार को अव्यक्त रहने दे। दिन और रात्रि को समान भाव से देखने के कारण वह सदैव अस्वप्न अर्थात् जागृत-अवस्था में ही रहे। अस्तु, जो निज स्वरूप के अनुसंधान और प्रणव के ध्यान में रत रहकर संन्यास पक्ष के द्वारा देह का परित्याग करता है, वह परमहंस-परिव्राजक होता है।

परमहंसोपनिषद् के पृष्ठ संख्या 195, पर *शान्तिपाठ* में आया है-

ॐ पूर्णमदः .....इति शान्तिः।। (द्रष्टव्य- अध्यात्मो-पनिषद्)। अथ योगिनां परमहंसानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति नारदो भगवन्तमुपगत्योवाच। तं भगवानाह। योऽयं परमहंसमार्गो लोके दुर्लभतरो न तु बाहुल्यो यद्येको भवति स एव नित्यपूतस्थः स एव वेदपुरूष इति विदुषो मन्यन्ते महापुरूषो यच्चितं तत्सर्वदा मय्येवावतिष्ठतै तस्मादहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते। असौ स्वपुत्रमित्रकलत्रबन्ध्वादीञ्छिखायज्ञोपवीतं स्वाध्यायं च सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोप-भोगार्थाय च लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत्। तच्च न मुख्योऽस्ति कोऽयं मुख्य इति चेदयं मुख्यः।।1।। अर्थात् एक बार नारद मुनि ने भगवान् (ब्रह्मा) के पास जाकर पूछा-योगी पुरूषों में जो परमहंस हैं, उनकी स्थिति कैसी होती है और उनका मार्ग कौन-सा है ? यह सुनकर भगवान् ने कहा-परमहंसो का मार्ग इस जगत् में अति दुर्लभ है, ऐसे व्यक्ति संसार में बहुत कम ही होते हैं। परमहंस सन्यासी एकाध ही मिलते हैं, वे नित्य पवित्र भाव में स्थित रहते हैं। ऐसे परमहंस ही वेद-पुरूष हैं; ऐसा विद्वज्जन मानते हैं। ऐसे महापुरूष का चित सदैव मुझमें ही अधिष्ठित रहता है और मैं भी उस महापुरूष में ही स्थित रहता हूँ। परमहंस सन्यासी अपने पुत्र, पत्नी, बन्धु, शिखा, यज्ञोपवीत, स्वाध्याय आदि समस्त कार्यों का परित्याग कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के हित में शरीर की रक्षा के लिये मात्र कौपीन, दण्ड और आच्छादन (उपवस्त्र) धारण करता है; किन्तु यह भी परमहंस की मुख्य दीक्षा नहीं है। नारद ने पूछा-फिर मुख्य दीक्षा कौन-सी है?

इसी उपनिषद् के द्वितीयोऽध्यायः, पृष्ठ संख्या 248 में आया है *मातृसूतकसम्बन्धं सूतके सह जायते। मृतसूतकजं देहं स्पृष्ट्वा स्नानं विधीयते।।7।।* जिसका तात्पर्य है; माता के सूतक से सम्बन्धित होने से मनुष्य के साथ ही सूतक भी जन्म ले लेता है तथा मरण काल का सूतक भी इस देह के साथ ही लगा रहता है। अतः शरीर का स्पर्श होने पर स्नान अवश्य करना चाहिये।

अहंममेति विण्मूत्रमलेगन्धदिमोचनम्। शुद्धशौचमिति प्रोक्तं मृज्जलाभ्यां तु लौकिकम्।।8।। मल, मूत्रादि दुर्गन्धयुक्त शरीर की शुद्धि तो मिट्टी एवं जल आदि से होती है; लेकिन वह सब तो लौकिक शुद्धि है। वास्तविक पवित्रता तो 'मैं और मेरा' का परित्याग करने से ही होती है।

याज्ञवल्क्योपनिषद् के पृष्ठ संख्या 257 में आया है *मांसपाञ्जालिकायास्तु यंत्रलोकेऽङ्गपञ्जरे। स्नाय्वस्थिग्नन्थिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम्।।14।।* जिसका तात्पर्य है; मांस-मेदा आदि द्वारा निर्मित, यत्र-तत्र गमन करने वाली पिटारी रूप नारी के शरीर में, जिसमें कि नसें, हड्डी एवं ग्रंन्थियाँ ही स्थित हैं, कौन-सी वस्तु शोभनीय है।

त्वग्मांसरक्तवाष्पाम्बु पृथक्कत्वा विलोचने। समालोक्यं रम्यं चेत्किं मुधा परिमुह्यसि।।15।। अर्थात्; इस (देवी स्वरूपा नारी) की त्वचा, मांस, रक्त, अश्रु एवं नेत्र आदि पृथक्-पृथक् करके (उसके शरीर के आन्तरिक अवयवों को) तो देखो। क्या वे शोभनीय लगते हैं? यदि नहीं, तो फिर क्यों इस पर व्यर्थ में इतने मुग्ध (आसक्त) हुये जाते हो।

मेरूशृङ्गतटोल्लासिगङ्गाजलरयोपमा। दृष्टा यस्मिन्मुने मुक्ताहारस्योल्लासशालिता।।16।। जिसके स्तनों पर लटकने वाले हार को मेरूपर्वत के शिखरों के बीच से गिरने वाली गंङ्गाजल की धारा की उपमा दी गई है और वैसे ही वह हार परिलक्षित भी होता है।

श्मशानेषु दिगन्तेषु स एव ललनास्तनः। श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिण्ड इवान्धसः।।17।। अर्थात्; श्मशान में तथा यत्र-तत्र दिशाओं में कटकर गिरा हुआ वह नारी का स्तन समय आने पर कुत्तों द्वारा इस तरह से खाया जाता हुआ दिखाई पड़ता है, जैसे कि एक सामान्य-सा खाद्य पदार्थ का टुकड़ा।

केशकज्जलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः। दुष्कृताग्निशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरम्।।18।। सुन्दर केशों को सुव्यवस्थित किये हुए, नेत्रों में कज्जल (काजल) लगाने वाली, दुःस्पर्श (स्पर्श के लिये दुष्प्राप्य), नेत्रों को प्रिय लगने वाली, प्रज्वलित अग्नि शिखा के सदृश जो स्त्रियाँ हैं, वे मनुष्य को तृणवत् क्षणभर में जला देती हैं।

ज्वलिता अतिदूरेऽपि सरसा अपि नीरसाः। स्त्रियो हि नरकाग्नीनामिन्धनं चारू दारूणम्।।19।। जिसका तात्पर्य है; ये स्त्रियाँ दूर से ही दग्ध कर देने वाली, अत्यंत रसयुक्त लगती हुई भी रसहीन कर देने वाली, नरक की अग्नि की लकड़ियाँ हैं, जो कि चारू दारूण (सुन्दर होने पर भी अत्यन्त दुःख दायी) प्रतीत होती है।

कामनाम्ना किरातेन विकीर्णां मुग्धचेतसः। नार्यो नरविहङ्गानामङ्गबन्धनवागुराः।।20।। कामदेव रूपी बहेलिये ने मानव रूपी पक्षियों को आबद्ध करने के लिये हृदय को मुग्ध (मोहित) देने वाला स्त्रीरूपी जाल बिछा रखा है।

जन्मपल्ल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम्। पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारी बडिशपिण्डिका।।21।। जन्म रूपी तलैया में निवास करने वाली, कलुषित हृदय रूपी कीचड़ में चलने वाले मनुष्य रूपी मछलियों के लिये दुर्वासना रूपी रस्सी से बंधी ये स्त्रियाँ मछली पकड़ने वाले कांटे की भांति हैं।

स्रोत

कठरूद्रोपनिषद्, मंत्र संख्या 2
वही (मंत्र संख्या 9-10), पृष्ठ संख्या 49
कुण्डिकोपनिषद्, मंत्र संख्या 7-8
कौषितकिब्राह्मणोपनिषद् (मंत्र संख्या 2), पृष्ठ संख्या 62
जाबालदर्शनोपनिषद् (मंत्र संख्या 13-14), पृष्ठ संख्या 96
वही, पृष्ठ संख्या 104, मंत्र संख्या 51
वही, चतुर्थ खण्ड-मंत्र संख्या 1
चतुर्थोपदेश, पृष्ठ संख्या 140
पञ्चमोपदेश, पृष्ठ संख्या 147
परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्, पृष्ठ संख्या 189 (मंत्र संख्या 2)
वही, पृष्ठ संख्या 191 (मंत्र संख्या 3-ख एवं 3-ग)
परमहंसोपनिषद्, पृष्ठ संख्या 195 (मंत्र संख्या 1)
वही, द्वितीय अध्याय, पृष्ठ संख्या 248 (मंत्र संख्या 7-8)
याज्ञवल्क्योपनिषद्, पृष्ठ संख्या 257 (मंत्र संख्या 14, 15, 16-17)
वही, मंत्र संख्या 18,19, 20-21

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,19-21
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 जुलाई 2014

वाल्मीकि रामायण में पर्दा प्रथा

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वाल्मीकि रामायण में पर्दा प्रथा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

श्री रामायण का महत्व इस बात से स्पष्ट होता है कि इसको वेद का रूपान्तर कहकर प्राचीनों ने प्रशंसा की है जैसे महाभारत को पञ्चम वेद कहकर महत्व दिया जाता है। वैसे ही इसको वेद का रूपान्तर कहकर इसकी श्रेष्ठता सिद्ध की जाती है।

श्री रामायण केवल इतिहास ही नहीं है, अपितु काव्य भी है, आदि काव्य होने का गौरव इसी को प्राप्त है। यह आदि-काव्य इसलिए है कि इसके पूर्व वेद को छोड़कर संस्कृत की व्यवहारिक भाषा में छन्दोबद्ध कोई ग्रन्थ ही नहीं था। सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से रामायण अपना अलग ही महत्व रखता है। प्राचीन कालीन आर्य जाति की सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थिति पर यह ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालता है। रामायण काल में आर्य जाति में परदे की प्रथा पूर्णरीत्या प्रचलित थी तथा अन्यान्य धार्मिक एवं सामाजिक नियमों की तरह इसका पालन भी अनिवार्य नियमों के अन्तर्गत था।

जिस समय श्री राम लक्ष्मण और सती सीता खुले रथ पर सवार हो वन के लिए राज भवन से निकले उस समय अयोध्या की प्रजा ने कातर कण्ठ से कहा था। ''या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि/ तामद्य सीतां पश्यन्ति राजमार्गगता जनाः।।'' (बाल्मीकि रामायण 2/33/18)[1]

जिस सीता को आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उसको आज सर्वसाधारण जन राजमार्ग पर जाते हुए देख रहे हैं। फिर जब रावण के मारे जाने के बाद भी रामचन्द्र ने विभीषण को आज्ञा दी कि यदि सीता मुझे देखने को लालायित हो तो उसे अभी मेरे पास लाओ इस पर उस समय जो घटना घटी उसका वर्णन आदि कवि ने इस प्रकार किया है, ''तूर्ण-मुत्सारणं तत्रकारयामास सर्वतः। कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झर पाणयः।।'' ''उत्सारयन्तः पुरूषाः समन्तात्परिचक्रमुः। ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः।।'' (बाल्मीकि रामायण 6/114-20-21)[2]

जब विभीषण को भगवान ने सीता को लाने की आज्ञा दी तब वह सीता जी को एक चमचमाती पालकी में, जिस पर बड़ा सुन्दर परदा लगा हुआ था, सवार कराया। जिस पालकी के आगे जामा पगड़ी पहने हाथों में बेंत लिए हुए सैनिक थे।

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वे चारो ओर घूम-घूम कर सबको हटाने लगे, तब रीक्षों, वानरों और राक्षसों के समस्त दल वहाँ से हटाए गए और वे सब दूर जाकर खड़े हो गए। उन सबको हटाते समय वैसा ही शोर हुआ जैसा कि वायु में वेग से उत्थित समुद्र के शब्द से होता है।

उन समस्त रीक्षों, वानरों और राक्षसों को बलपूर्वक हटाते हुए देख श्री रामचन्द्र ने परदा के नियमों का वर्णन किया है, ''किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः/ निवर्तयैनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम।। व्यसनेषु न कृच्छेषु न युद्धेषु स्वयंवरे। न क्रतौ नो विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियाः।। सैषा युद्धगता चैव कृच्छे च महति स्थिता। दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान्मत्समीपे विशेषतः। ''तदानय समीपं मे शीघ्रमेना विभीषणः/ रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत।।'' (बाल्मीकि रामायण- 6-14)[3]

श्री राम विभीषण से कहते हैं कि तुम अनादर कर मेरे जनों को क्यों सता रहे हो? ये सभी मैं स्वजन हैं। इष्टजनों का वियोग होने पर, राजविप्लव के समय, समर भूमि में, स्वयंवर में, यज्ञशाला में, विवाह मण्डप में स्त्रियों का जनसमाज के समक्ष आना दोष युक्त माना जाता था।

इस समय सीता विपत्ति में हैं और यह युद्ध काल है। अतः ऐसे समय और विशेषकर मेरे समक्ष उसका बिना परदे आने में कोई दोष नहीं।

इन वचनों को सुन विभीषण प्राचीन परम्परा भंग होते देख सोच विचार में पड़ गए। श्री राम की आज्ञानुसार सीता को बिना परदे के जनसमाज के बीच से राम जी के समीप लाया गया।

सीता जी का परदा त्यागकर जन समाज के मध्य आना वानर जातियों और हनुमान जी को भी अनुचित लगा। यथा- ''ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनूमांश्च प्लवंगमः/ निशम्य वाक्यं रामस्य बभूर्ण्यथिता भृशम्।'' (बाल्मीकि रामायण 6/114/32)[4]

वहाँ से आने में सीता की क्या दशा थी यह भी श्रवणीय है। ''लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली। विभीषणेनानुगता भर्त्तारं साम्यवर्त्ततः।।'' ''सा वस्त्रसंरूद्धमुखी लज्जया जनसंसदि। रूरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी।।'' (बाल्मीकि रामयण 6/114/34-35)[5]; अर्थात् जानकी लोगों के सामने आने में मारे लज्जा के अपने शरीर में दबी जा रही थी। विभीषण उनके पीछे आ रहे थे। इस प्रकार सीता अपने पति के निकट पहुँची। इस जनसमाज में लज्जावश उन्होंने घूँघट कर लिया था और इस अपमान से घबराकर वह हे आर्यपुत्र! कहकर रो पड़ी। सीता ने यहाँ जो हे आर्यपुत्र! कहा उसका भी एक गूढ़ रहस्य है अर्थात् वह श्रीरामचन्द्र जी को इशारे से कहती हैं कि आर्यपुत्र होकर मर्यादा विरूद्ध कार्य क्यों कर रहे हैं।

अतः यह मानना पड़ेगा कि आर्य जाति रामायण काल में स्त्रियों के लिए परदा प्रथा को उपयोगी मानती थी।

लंका में भी उच्च घराने में परदा प्रथा का प्रचलन देखने को मिलता है। जिस समय रावण के मारे जाने का दुःसंवाद रावण के रनवास में पहुँचा उस समय रावण की अंतःपुर वासिनी ललनाएँ अपार शोकसागर में निगम्न हो नंगे पाँव रणांगण में पहुँची। पति के शव से लिपट कर विलाप करती हुई मंदोदरी कहने लगी, ''दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानवगुष्ठिताम्/ निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो।'' ''पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान्। बहिर्निष्पतितान्सर्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि।''(बाल्मीकि रामायण -111/61-62)[6]

हे स्वामी! मैं परदे के बिना नगर के फाटक से निकलकर नंगे पांव यहाँ चली आयी हूँ, तुम इसके लिए मुझसे क्रुद्ध क्यों नहीं होते। देखो मैं ही अकले नहीं अपितु तुम्हारी प्यारी समस्त पत्नियाँ लज्जा त्याग कर अंतः पुर के बाहर निकल आयी है- इनको इस दशा में देख कर आपको क्रोध क्यों नहीं आता?

अयोध्या में तो यहाँ तक परदे का आग्रह था कि रूवास की खास ड्योढ़ी पर स्त्रियों बालकों और बूढ़ों को ही पहरे पर रखा जाता था। ''प्रणम्य रामस्तान् वृद्धांस्तृतीयायां ददर्श सः। स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वाररक्षणतत्पराः।।'' (बाल्मीकि रामायण 2/20/12)[7]

अयोध्यापुरी में अविवाहिता कन्याओं को छोड़ विवाहित स्त्रियाँ वाटिका आदि में भी नहीं जाती थीं और सायंकाल के समय कुमारियाँ भी बागों में क्रीड़ा करने नहीं जाती थी। यथा- नाराजके जनपदे उद्यानानि समागतः/ सायाहने क्रीडितुं यान्ति कुमार्यो हेमभूषितः।। (बाल्मीकि रामयण)[8]

इस प्रकार प्रस्तुत प्रमाणों के माध्यम से रामयण काल में परदा प्रथा का होना पुष्ट होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1] *बाल्मीकि रामायण* 2/33/18
[2] *बाल्मीकि रामायण* 6/114-20-21
[3] *बाल्मीकि रामायण* - 6-14
[4] *बाल्मीकि रामायण* 6/114/32
[5] *बाल्मीकि रामयण* 6/114/34-35
[6] *बाल्मीकि रामायण* -111/61-62
[7] *बाल्मीकि रामायण* 2/20/12
[8] *बाल्मीकि रामयण*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,22-24
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अप्रैल 2015

उत्तरकालीन जैन महाकाव्यों में विर्वित क्षत्रियों की स्थिति

सुम्बुला फिरदौस*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उत्तरकालीन जैन महाकाव्यों में विर्वित क्षत्रियों की स्थिति* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुम्बुला फिरदौस* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जैन कथाकाव्यों के रचनाओं ने बौद्ध साहित्यकारों के समान क्षत्रियों को सभी वर्णों में सर्वश्रेष्ठ माना है एवं उनके प्रभुत्व को स्वीकार किया है। क्षत्रिय बहत्तर विधाओं का अध्ययन करते थे एवं युद्धकला में प्रवीणता प्राप्त करते थे। *अभिधान चिन्तामणि में* क्षत्रिय वर्ग के 5 नाम क्षत्रय, क्षत्रिय, राजा, राजन्य, बाहुसम्भव गिनाये गये हैं।[1] *यशस्तिलकचम्पू से* ज्ञात होता है कि जो युद्ध कला को सीखकर देश का शासन चलाते थे वे क्षत्रिय कहलाते थे।[2] *कथाकोश के* अध्ययन से ज्ञात होता है कि शासक वर्ग प्रभुत्व सम्पन्न था उनके शासन, प्रशासन, युद्ध, राज्य की सीमाओं में शत्रुओं से टक्कर एवं आन्तरिक अव्यवस्था में योद्धाओं के साहस के अनेक प्रसंग मिलते हैं। राज्य के आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। योग्य एवं प्रशिक्षित सैनिकों को सेना में शामिल किया जाता था। राजा एवं मंत्रियों के मौखिक आदेश पर्याप्त माने जाते थे, परन्तु मूल दस्तावेजों की सुरक्षा की व्यवस्था की जाती थी।[3] *हेमचंद्र के* अनुसार अधिकतर राजा क्षत्रिय वर्ण के होते थे उनके सिर, केश रहित होते थे इस कारण चामुण्ड राजा को मूर्ध शिखा कहा गया है।[4]

राजा सजा करने वाले अपराधी को दण्ड देते थे एवं हत्या करने पर फाँसी दी जाती थी।[5] *समराइच्चकहा से* ज्ञात होता है कि क्षत्रिय का मुख्य कर्त्तव्य जनता की रक्षा करना है एवं अपराधियों को दण्ड देना।[6] *मानसोल्लास में* क्षत्रियों का वर्णन वर्मन के रूप में हुआ है।

वे क्षत्रिय जो शास्त्रों के द्वारा जीविकोपार्जन नहीं कर सकते थे।[7] वे व्यापार वाणिज्य एवं कृषि कार्य करने लगे, वे वेद पढ़ाने का काम नहीं करते हैं यज्ञोपवीत धारण करते हैं यज्ञ करवाते हैं। यज्ञ करवाते हैं एवं शासन करते हैं।[8] *नायाधम्मकहा से* ज्ञात होता है कि क्षत्रिय अन्य कार्य भी करते थे। क्षत्रिय होने पर भी नन्दा रायगीह का महत्वपूर्ण वैश्य था उसने नगर में कमल का तालाब बनवाया।[9] *अलबरूनी के* अनुसार क्षत्रियों की स्थिति ब्राह्मणों से अधिक निम्न नहीं है वे एक ही नगर में साथ रहते हैं वे एक ही भवन में निवास करते हैं।[10] *कुवलयमाला में* 18 राष्ट्रीयताओं का उल्लेख हुआ है, उनमें 16

* पूर्व-शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का वर्णन हुआ है उनकी भाषाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। *हरिवंश पुराण के* एक श्लोक से ज्ञात होता है कि वैश्यों के संसाधनों की प्राप्ति के बिना ब्राह्मणों एवं क्षत्रिय अपने धार्मिक, बौद्धिक एवं प्रबन्धन विषयक कार्य नहीं कर सकते थे। कलियुग में राजन्य वर्ग वैश्य वृत्ति अपनाने एवं धान्य पैदा करने एवं अन्य उपायों से जीवन यापन करने को विवश हो जायेंगे।[11]

आदिपुराण से उल्लेख है कि क्षत्रियों में श्रेष्ठ महात्माओं आप लोगों को आदि ब्रह्म भगवान, वृषभ ने दुःखी प्रजा की रक्षा करने के लिये नियुक्त किये हैं दुःखी प्रजा के लिये नियुक्त हुये आप लोगों का धर्म 5 प्रकार का है उसे जानकर तुम लोग शासन के अनुसार प्रजा का हित करने में प्रवत हो। तुम्हारा धर्म कुल का पालन करना, बुद्धि का पालन करना, अपनी रक्षा करना, प्रजा की रक्षा करना एवं सामंजस्य बनाना है इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्राह्मण के 5 कर्त्तव्य बताये गये हैं।[12]

यशस्तिलकचम्पू से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय वर्ग अन्य वर्गों में भी विवाह करते थे अनेक राजा वैश्य पुत्रों से अपनी कन्याओं का हाथ देते हुये देखे जाते हैं।[13]

कुवलयमाला से ज्ञात होता है कि राजवंश में उत्पन्न क्षत्रिय जाति को ठाकुर कहा जाता था इस सम्बन्ध में उद्धरण मिलता है कि उज्जैयिनी के राजा अवन्तिवर्द्धन के दरबार में राजवंश में उत्पन्न क्षेत्रबद्ध नाम का वृद्ध ठाकुर अपने पुत्र वीरभद्र के साथ राजा की सेवा में नियक्त था उसे सेवा के बदले एक ग्राम राजा ने दान में दिया।[14] ठक्कुरी परिवारों का सम्बन्ध राज घरानों से था। अपने को क्षत्रिय कहलाने वाले योद्धा अपनी मातृभूमि की रक्षा करना परम कर्त्तव्य समझते थे।[14]

अनेक विदेशी जातियों को क्षत्रिय वर्ग में समाहित किया गया हूणों का क्षत्रिय के रूप में उल्लेख हुआ जो कि मध्य एशिया से भारत में आकर बस गये थे। *कुमारपालचरित से* ज्ञात होता है कि दुर्लभदेवी के स्वयंवर में जो राजा महेंद्र की बहिन थी वहाँ हुण राजा भी अन्य राजाओं के साथ मौजूद थे हुण भारतीय समाज में सामहित हो गये थे।[15] *दशरथ शर्मा के* अनुसार गोंड जनजाति ने भारतीय संस्कृति को अपना लिया उनकी गणना क्षत्रियों में की गई। क्षत्रियों में वर्ण सिद्धान्त सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ।[16] आभीर कबीले के क्षत्रियों को आभीर क्षत्रिय कहा गया।[17]

क्षत्रिय वर्ग में जातियों का बाहुल्य राजपूत वर्ग के बाहुल्य के कारण हुआ अभिलेखों में राजघरानों को राजवंशी एवं चंद्रवंशी नाम दिया गया। राजपूत शब्द का प्रयोग राजकीय पद धारण करने वाले क्षत्रियों के लिये किया गया।[18] जेड0 जी0 एम0 डैरट के राजपूतों को प्राचीन क्षत्रिय जाति से पृथक् करने का प्रयास किया है परन्तु अन्य विद्वान इस मत को नहीं मानते हैं।[19] व्रात्य क्षत्रियों को ब्राह्मणीय समाज में स्थान दिया गया। जाटो का राजपूत नहीं माना गया जाटो की सभा में गुर्जर एवं तोमर बैठते थे गुर्जर राजपूत ही नहीं अन्य वर्गों में बंट गये।[20] क्षत्रियों के अनेक वर्ग विभिन्न ग्रंथों में मिलते हैं

त्रिशष्टिशलाकापुरूषचरित में क्षत्रिय वर्ग में चार वर्गों में विभाजित किया गया है- उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्र। उग्र वे अधिकारी थे जो अपराधियों को दण्ड देते थे।[21] *इब्नखुर्ददवा ने* क्षत्रियों को दो वर्गों में विभाजित किया-क्षत्रिय एवं सत् क्षत्रिय।[22]

अभिधान चिन्तामणि से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण से क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न संतान ''अम्बष्ठ'' कहलाती थी। क्षत्रिय से वैश्य स्त्री से उत्पन्न संतान को ''क्षत्ता'' कहते थे। वैश्य से क्षत्रिय स्त्री में उत्पन्न संतान को ''मागध'' कहते थे।[23]

आदिपुराण से ज्ञात होता है कि जो क्षत्रिय नहीं है वे सम्यक् चरित्र धारण करके क्षत्रिय हो जाते हैं इसलिये रत्नत्रय के अधीन जन्म होने पर मुनि भी राजा के समान क्षत्रिय हो जाते है। आदिब्रह्म भगवान वृषभ ने क्षत्रपूर्वक ही इस सृष्टि की रचना की अर्थात् क्षत्रिय वर्ग की सबसे पहले रचना की।[24]

जैन कलाकारों ने क्षत्रिय राजाओं को जैन धर्म में समर्पित माना है। अनेक राजाओं ने जैन मंदिरों का निर्माण करवाया। कुमारपाल ने अपने गुरू हेमचंद्र से प्रभावित होकर जैन धर्म को संरक्षण दिया सारे राज्य में अहिंसा नीति का प्रवर्तन किया एवं दीक्षा के अवसर पर कुमार बिहार का निर्माण करवाया।[25] *प्रबन्धचिन्तामणि से* ज्ञात होता है कि मूलराज ने जैन मंदिर बनवाया एवं मूलराजा व साहिक बहलाया।[26] भट्टारक सोमदेव के अनुसार चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र जैन धर्म में आसक्त होने के कारण भाई बहन है। जैन धर्म सबको समान रूप से शरण देता है।[27] अनेक क्षत्रिय राजाओं एवं राजकुमारियों के संसार त्याग कर जैन धर्म स्वीकार किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैन कथाकाव्यों ने क्षत्रिय वर्ण को अन्य वर्णों से सर्वश्रेष्ठ माना है। क्षत्रिय शासन के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करने लगे। अनेक क्षत्रिय वर्गों का अभ्युदय हुआ तत्कालीन रचनाकाल में अनेक विदेशी जातियाँ क्षत्रियों में समाहित हो गई अनेक क्षत्रिय शासकों ने जैनधर्म के प्रति आस्था प्रदर्शित की अब वे अन्य वर्णों में विवाह भी सम्पन्न करवाने लगे।

संदर्भ

[1]अभिधान चिन्तामणि, पृष्ठ संख्या 20
[2]वर्ण, जाति और धर्म, पृष्ठ संख्या 175
[3]कथाकोश, पृष्ठ संख्या 337
[4]कुमारपाल चरित, पृष्ठ संख्या 4/17
[5]पुन्यास्त्रव कथाकोश, पृष्ठ संख्या 82
[6]समराइच्चकहा -एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या 96
[7]रामशरण शर्मा, पृष्ठ संख्या 83
[8]सचाऊ, भाग-2, पृष्ठ संख्या 136
[9]नायाधम्मकहा, पृष्ठ संख्या 13/141
[10]सचाऊ, पृष्ठ संख्या 46
[11]हरिवंश पुराण, पृष्ठ संख्या 117/27
[12]आदिपुराण, पृष्ठ संख्या 331
[13]यशस्तिलकचम्पू -सुन्दर लाल शास्त्री, पृष्ठ संख्या 319/369
[14]कुवलयमाला, पृष्ठ संख्या 5/26
[15]कुमारपाल चरित, पृष्ठ संख्या 12/102
[16]राजस्थान थ्रू द एजेस, पृष्ठ संख्या 438
[17]फारेन एलिमेंट इन हिन्दू पापुलेशन, पृष्ठ-डी0 आर0 भण्डारकर, पृष्ठ संख्या 286
[18]सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, पृष्ठ संख्या 32
[19]जे0 इ0 एच0 एस0 ओ0, भाग-7
[20]फारेन एलिमेंट इन हिन्दू पापुलेशन- डी0 आर0 भण्डारकर, पृष्ठ संख्या 301/3
[21]विशष्टि शलाका पुरूष चरित, पृष्ठ संख्या 12/974
[22]सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया, भाग-16/17
[23]अभिधान चिन्तामणि, पृष्ठ संख्या 323
[24]आदिपुराण, पृष्ठ संख्या 331
[25]एपिग्राफिक इण्डिया, पृष्ठ संख्या 54/55
[26]प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ संख्या 17
[27]वर्ण, जाति और धर्म, पृष्ठ संख्या 237

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,25-28
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 अगस्त 2015

सामाजिक न्याय : दहेज के परिप्रेक्ष्य में

कीर्ति चौधरी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सामाजिक न्याय : दहेज के परिप्रेक्ष्य में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कीर्ति चौधरी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय समाज में कन्या धन कही जाने वाली प्रथा कालान्तर में दहेज प्रथा के नाम से प्रचलित हुई। मनु ने भी स्त्रीधन का उल्लेख किया है। साधारण शब्दों में विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया गया धन, सम्पत्ति, उपहार एवं वस्तुएँ दहेज कही जाती हैं।

कान्टा भाटी के अनुसार, ''प्राचीन समाजों में दहेज प्रथा का प्रचलन नहीं था। केवल धनी व अमीर राजघरानों में विवाह के समय कन्या के साथ वर को भी कुछ वस्तुएँ भेंट के रूप में दी जाती थी। द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, सीता आदि राजघराने की कन्याओं के विवाह में हाथी, घोड़े, गाय, नौकर तथा जवाहरात भेंट के रूप में दिये गये थे। विवाह के अवसर पर पवित्र स्नेह के कारण स्वेच्छा से दी गई इन वस्तुओं को दहेज नहीं कहा जा सकता है। सामान्य परिवार की कन्याओं को भी उनकी जरूरत की वस्तुएँ दी जाती थी वह भी माता-पिता अपनी इच्छानुसार देते थे। स्मृतिकाल में भी दहेज प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। वास्तव में इस प्रथा का (दहेज-प्रथा) प्रचलन मध्यकाल में हुआ है विशेष रूप से राजपूताना धनी परिवारों में। जो वस्तुएँ प्रेम व इच्छा स्वरूप दी जाती थी वह प्रथा एक बुराई में उभरकर सामने आई।''[1]

प्रभा आप्टे के अनुसार, ''दहेज का अर्थ वह सम्पत्ति या मूल्यवान वस्तुएँ है, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में देने का समझौता, कन्यापक्ष के परिवार वाले वर-पक्ष को अपनी कन्या के विवाह के बदले में विवाह के समय या उसके बाद देने का वादा करते हैं।''[2]

दहेज का समाज में प्रभाव

दहेज समाज में आज प्रत्येक स्तर पर व्याप्त है। नारी के जीवन को एक आकार प्रदान करने में इसका सहयोग बढ़ता जा रहा है। कन्या के जन्म काल में प्रायः होने वाला दुःख या खेद कहीं ना कहीं दहेज के कारण है। एक साधारण व्यक्ति के लिए दहेज

* शोध छात्रा, दर्शन एवं धर्म विभाग [कला संकाय] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

देना एक अवांछनीय बोझ है। मेहनत से कमाएँ हुए रूपये में व्यक्ति आजीविका चलाता है। कन्या के जन्म में वह एक बोझा का अनुभव करता है, कि वह दहेज दे सकेगा या नहीं? कन्या भ्रूण हत्या भी इसी कारण व्याप्त है। कन्या के ना होने पर दहेज नहीं देना होगा। पुत्र जन्म पर हर्ष ये बातें हमारे पितृ-सत्तात्मक समाज की देन है।

दहेज के लिए परिवार में नारी को मानसिक व शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ती है कि उसे जलाकर मारने में भी वर पक्ष नहीं झिझकता ।

यू0एन0टी0पी0 द्वारा प्रकाशित ह्यूमन डेवलमेन्ट रिपोर्ट, 1990 के अनुसार- ''महिलाओं की जितनी दहेज हत्या होती है। उसमें आधी से अधिक हत्यायें उनके पतियों द्वारा की जाती है।''[3]

केन्द्र सरकार की 1993 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में औसतन ''एक दिन में 33 तथा एक वर्ष में लगभग 5000 हत्यायें दहेज के कारण होती है।''[4] दहेज की लालच में वर पक्ष कन्या को मारता-पीटता है। विवाहिता का सम्पूर्ण जीवन त्रासदी बन जाता है।

निम्नलिखित सरकारी आंकड़े इसके परिणाम के सूचक है-

Incidence of Crimes (1996-2002)

Crime	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002
Crime Dowry Death	5513	6006	6975	6699	6995	6851	6822
Cruelty by husband and relatives	35246	36592	41375	43823	45778	49170	49237
Dowry prohibition Act	-	2685	3578	3064	2876	3222	2816

source: Crime in India, 2002, (New Delhi, National Crime Records Bureau, 2004), vol. 50, pp.18, 140.[5]

''1995 में 4648 दहेज हत्याएँ हुई, जो कि 2005 में 6787 तक पहुँच गयी जो 46.0% से अधिक थी।''[6]

''दहेज हत्या में युवा स्त्री की हत्या कर दी जाती है या वो निरन्तर प्रताड़ित होने पर पति द्वारा सताये जाने पर आत्महत्या कर लेती है।''[7]

एक अन्य अध्ययन के अनुसार- दिल्ली में महिलाओं की जलने से हुई मृत्यु में 90% मृत्यु का कारण दुर्घटना, 5% आत्महत्या एवं सिर्फ 5% हत्याओं के रूप में स्वीकार किए गए है।

समाज में ऋणग्रस्तता दहेज के द्वारा आती है। वर पक्ष की माँग को पूरा करने के लिए कन्या पक्ष अपने स्तर से अधिक रूपये खर्च करने को बाध्य होता है। आजीवन कर्ज के बोझ से दबे रहकर परिवार के सदस्यों का जीवन सोचनीय हो जाता है।

दहेज का कारण

भौतिकवादी दृष्टिकोण : आज के युग का मनुष्य भौतिकवादी सोच रखता है। अपने स्तर से अधिक पाने की आकांक्षा दहेज के लिए कारक होती है। दहेज देने का प्रचलन भी भौतिकवादी है। बेटी को आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ प्रदान करना सहज माना जाता है। बेटी सम्पति मात्र से प्रसन्न नहीं रह सकती, उसके लिए उसे एक ऐसा परिवेश चाहिए, जहाँ उसके व्यक्तित्व का विकास हो।

2. *परम्परावादी दृष्टिकोण :* भारतीय धर्म में भी कन्याधन, स्त्रीधन एवं मेहर को पर्याप्त स्थान प्राप्त है। दहेज प्रथा मध्यकाल में समाज में आयी। धीर-धीरे लोग इसे परम्परा समझने लगे।

3. *दहेज सम्बन्धी अपराधों के प्रति सामाजिक उदासीनता :* समाज का प्रत्येक स्तर दहेज, हिंसा और ऐसी हत्या में हस्तक्षेप नहीं करता। पुलिस की सहायता भी लोग नहीं करते। अतः समस्या प्रायः बनी रहती है।
4. *दहेज के कानूनी मदद से सम्बन्धित कठिनाई :* कानून की जटिलताओं के कारण एक सामान्य स्त्री या पुरूष दहेज सम्बन्धी कानूनी मदद नहीं लेता है। कानून की प्रक्रियाओं में जल्दी निर्णय नहीं आता जिसके कारण दोषी दहेज लेने से नहीं डरते।
5. *दहेज से पीड़ित स्त्री* को पिता पक्ष सहायता देने से हिचकता है। दहेज उत्पीड़न को लोग गम्भीरता से नहीं लेते। जब स्थिति असहनीय हो जाती है तब तक बहुत देर हो जाती है।
6. *कन्या को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार न मिलना :* संविधान भी पुत्री को सम्पत्ति में समान रूप से उत्तरदायी मानता है। किन्तु यथार्थ में बहुत कम स्त्रियाँ अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकार ले पाती हैं समाज में यह असमानता दहेज की समस्या को जन्म देती है। सम्पत्ति पर कन्या का भी अधिकार है। दहेज में अनैतिक दोहन किया जाता है। दहेज की प्रक्रिया अनैतिक, असामाजिक व गैरकानूनी है।

दहेज सम्बन्धी कानून

9 मई, 1961 में लोक सभा और राज्य सभा की संयुक्त बैठक में यह विधेयक पास हो गया तथा जिसे जुलाई सन् 1961 से लागू किया गया। इस अधिनियम में दहेज लेने और देने पर प्रतिबन्ध लगाया गया परन्तु साथ ही यह बताया गया है कि विवाह के अवसर पर दिये जाने वाले उपहार दहेज नहीं माने जायेंगे।

धाराओं के अनुसार

1. धारा 3 में बताया गया है कि यदि कोई व्यक्ति दहेज देता है या लेता है अथवा इसके लेन-देन में सहायता करता है तो उसे 6 महीने की कारावास और 5 हजार रूपये का दण्ड दिया जा सकता है।
2. अधिनियम की धारा में 4 में कहा गया कि यदि वर या कन्या माता- पिता या कोई भी व्यक्ति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दहेज मांगेगा तो उपर्युक्त प्रकार से दण्डित होगा।
3. धारा 7 के अन्तर्गत कहा गया है कि अदालत इस अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले अपराधों पर तभी विचार करेगी जब इस बारे में लिखित में शिकायत पेश हो, शिकायत किसी प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अदालत में की जाये, तथा
4. शिकायत दहेज के लेने अथवा देने के एक वर्ष के भीतर की जाये।

इस प्रकार दहेज निषेध 1961 का कानून दहेज के लेने व देने दोनों पर रोक लगाता है।"[8] दहेज सम्बन्धी कानून (1961, 498a) बने 45 वर्ष से अधिक हो गये। 1983 में इस कानून में सुधार हुआ।

कानून का प्रभाव दहेज प्रथा को रोकने में सक्षम नहीं है। दहेज की घटनाएँ कम नहीं हुई बल्कि बढ़ी है यह चिन्ता का विषय है। दहेज की बढ़ती समस्या को रोकना एक चुनौती बन चुका है। इसको रोकने के लिए सरकार, निजी संगठनों व समाज के विभिन्न वर्गो को एक होकर विचार करना होगा अन्यथा यह समस्या जड़ से कभी खत्म नहीं होगी। दहेज प्रथा की जटिलताओं से निम्नलिखित सुझावों पर विचार करने की आवश्यकता है :

- सर्वप्रथम दहेज सम्बन्धी कानून पर प्रचार-प्रसार करना होगा। गाँव-गाँव में शिविर के माध्यम से दहेज विरोधी कार्यक्रम आयोजित करना होगा। जिससे कानून का ज्ञान एक आम नागरिक को हो।
- कानून को अपने निर्णय शीघ्र देने होंगे। जिससे दोषी को सजा समय से समिल सके। प्रायः न्याय मिलने में अत्यधिक समय लगता है जिसके कारण दोषी को कानून का भय नहीं रहता। वह दहेज लेने में नहीं हिचकते।
- समाज के प्रबुद्ध वर्ग को दहेज के दोषों को देखते हुए यह संकल्प करना चाहिए कि वह ना दहेज लेगे ना देगें। ऐसे लोग अपना एक संगठन बनाएं व ई-मेल व इंटरनेट द्वारा आपस में विवाह सम्बन्ध स्थापित करें।

- स्त्रियों को दहेज के विषय में जागरूक होना चाहिए। आत्मनिर्भर होकर ही स्त्री इस समस्या का प्रतिरोध कर सकती है। लड़के के माँ -बाप भी तथ्य को स्वीकारें कि वो अपने लड़के का मूल्य नहीं लगायेंगे व दहेज की अनैतिकता से बचेंगे।
- पैतृक सम्पत्ति में बेटी का भी अधिकार है, समाज को ऐसा समझना चाहिए व उसको अधिकार प्रदान करना चाहिए।

निष्कर्ष

विवाह दहेज की नीव पर ना हो इसके लिए समाज में दहेज लेने वालों का बहिष्कार आवश्यक है। विवाह के बाद स्त्री वर के घर जाती है। ये एक प्रथा है। स्त्री का पैतृक सम्पत्ति में समान अधिकार है। दहेज जबरदस्ती माँगी सम्पत्ति है इसकी अनैतिकता उजागर करने की आवश्यकता है। दहेज विरोधी सोच को मात्र सोच न मानकर आन्दोलन बनाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

[1]*महिला उत्पीड़न -दहेज प्रताड़ना तथा दहेज हत्या,* कान्ता भाटी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004, पृ0 114

[2]वही, पृ0 116

[3]वही, पृ0 115

[4]वही, पृ0 115-116

[5]DOWRY DEATHS, *Legal provisions and Judiciary Interpretation,* VINAY SHARMA, Deep &Deep publication, New Delhi, 2007,p.151

[6]*http//en.wikipedia.org.*/wiki/dowrydeath

[7]वही

[8]*महिला उत्पीड़न -दहेज प्रताड़ना तथा दहेज हत्या,* कान्ता भाटी, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2004, पृ0 121

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,29-36
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अक्टूबर 2015

सोशल मीडिया का पुस्तकालय पर प्रभाव

अरूण कुमार गुप्त*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सोशल मीडिया का पुस्तकालय पर प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अरूण कुमार गुप्त* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

वर्तमान समय के बदलते परिवेश में सोशल मीडिया ने अपनी पहचान शिक्षा के हर क्षेत्र में अलग-अलग तरीके से किया है। मीडिया ने शिक्षा के क्षेत्र में जिस भी प्रकार के पुस्तकालय है उसकी कमियों पर प्रकाश डालकर जनता एवं सरकार के सामने लाने का प्रयास किया है। जैसे- उसकी समस्या पत्रों में दूरदर्शन चैनलों पर पड़ा सरकार देखते ही उस समस्या को निवारण किया है। मीडिया ने शिक्षा के क्षेत्र में अथक प्रयास करके अध्ययन से सम्बन्धित समस्या को समाप्त कराकर उसको आधुनिक तरीके से कराने पर सफल रहा है। पुस्तकालयों को आधुनिक बनाने में भी सोशल मीडिया की अहम भूमिका रही है। सोशल मीडिया के माध्यम से अनुसंधान क्षेत्रों में जितने भी अनुसंधान हो रहे है। उनको प्रयोग में लाने पर मीडिया बल दे रही है। सोशल मीडिया के माध्यम से पाठकों को शोध छात्रों को शिक्षित व्यक्तियों को आधुनिक समय में हो रहे परिवर्तन को सभी के सामने प्रदर्षित करने में सहायक सिद्ध हो रही है। सोशल मीडिया का प्रभाव घर बैठे लोग इंटरनेट के माध्यम से देख व सुन रहे है। आने वाले दिनों में सोशल मीडिया का और भी प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में पाठकों के सामने दिखाई देगा।

सोशल मीडिया के माध्यम से पुस्तकालय में पाठकों के अध्ययन की सामग्री को दृश्य एवं श्रव्य के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। इसके माध्यम से अध्ययन सामग्री को देखकर एवं सुनकर किया जाता है। दृश्य एवं श्रव्य के माध्यम से पाठकों की शिक्षा व्यवस्था में दिन प्रतिदिन सुधार हो रहा है। इससे पाठकों को अध्ययन, सीखने में, आसानी होती है। दृश्य श्रव्य सामग्री शिक्षण के वो साधन है जो पाठकों को पुस्तकालय में दिखाई देने के साथ-साथ सुनाई भी देते हैं। श्रव्य सामग्री शिक्षण का वह साधन है। जो केवल कानों के प्रयोग से सुनाई देता है इससे आंखों का उपयोग नहीं होता है। वे शिक्षण साधन जो पाठकों की श्रव्य एवं दृश्य की ज्ञानेन्द्रियों को कार्य करने के लिए सक्रिय कर दें और जिससे अध्ययन आसान हो जाये। शिक्षण प्रक्रिया में जब शिक्षण विधियां और प्रविधियां प्रभावशाली दिखाई नहीं देती तो इस प्रकार की सामग्री का प्रयोग किया जाता है। यह सामग्री न केवल समग्र अधिगम प्रक्रिया को ही प्रभावित करती बल्कि शिक्षण प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली विधियों तथा

* पुस्तकाल्याध्यक्ष, माँ खण्डवारी पी.जी. कॉलेज [चहनियाँ] चन्दौली (उत्तर प्रदेश) भारत। E-Mail : arunkumarg402@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रविधियों को भी प्रभावित करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तकालय में सोशल मीडिया के माध्यम से दृश्य श्रव्य साधन न केवल अध्ययन प्रक्रिया को ही प्रभावित करते हैं। बल्कि पाठकों के श्रवण तथा चक्षु इन्द्रियों को भी प्रभावित करते हैं। ये साधन किसी के समक्ष प्रत्यक्ष अनुभव को अप्रत्यक्ष रूप से जानने के लिए सहायक सिद्ध होते हैं।

सोशल मीडियां के माध्यम से दृश्य एवं श्रव्य पुस्तकालय

दृश्य पुस्तकालय वह पुस्तकालय है जिसमें दृश्य इन्द्रियों का प्रयोग होता है। इस पुस्तकालय के माध्यम से ज्ञान प्राप्त दृश्य इंद्रियां अर्थात आंख का प्रमुख हांथ होता है।

श्रव्य-दृश्य पुस्तकालय का सम्बंध उस पुस्तकालय से होता है। जिसमें पाठकों को विषय की विषयवस्तु सुनने और देखने की दोनों तरह की इन्द्रियों का प्रयोग किया जाता है अर्थात आंख तथा कान दोनों को एक साथ कार्य करना पड़ता है। बालक आंख से देखता है कान से सुनता है। तब विषयवस्तु को समझने का प्रयास करता है। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान शुद्ध, यथार्थ, प्रासंगिक तथा सरलता से ग्राह्य एवं स्पष्ट होता है।

आजकल सोशल मीडिया के अथक प्रयास से श्रव्य दृश्य सामग्री शिक्षा के क्षेत्र में एक सबल तथा महत्वपूर्ण कदम उभर कर सामने आया है। यह शिक्षण प्रक्रिया को रोचक तथा अर्थपूर्ण बनाता है। इस लिए वर्तमान समय में अच्छे विद्यालयों के पुस्तकालयों, महाविद्यालयों के पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों, एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों में श्रव्य दृश्य की व्यवस्था बनायी जाने लगी। वर्तमान सरकारें भी अपना कदम इस क्षेत्र में बढ़ा दिया है। इस प्रकार के पुस्तकालयों में सोशल मीडिया के माध्यम से श्रव्य-दृश्य की सामग्री युक्त बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है ताकि आने वाले समय में पाठकों को पुस्तकालय के माध्यम से उचित ज्ञान और दर्शन होते रहे। पुस्तकालय में सम्बन्धित पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएं, निर्देश पत्र आदि आदि सुव्यवस्थित होते है। पुस्तकालय में प्रत्येक सामग्री पर उसका नाम, कार्य प्रयोग विधि, आदि से सम्बंधित निर्देश पत्र अवश्य होना चाहिए।

श्रव्य दृश्य पुस्तकालय निदेशक अथवा प्रभारी को श्रव्य दृश्य सामग्री के क्षेत्र में उचित व उपयुक्त वर्णित सभी उपकरण यथा श्यामपट्ट, प्रत्यक्ष वस्तुएं, प्रतिमान, स्लाईड फिल्म स्ट्रीप तथा फिल्म, चार्ट ग्राफ नक्शे, ग्लोब, चित्र व रेखाचित्र पत्र-पत्रिकाएं, संग्रहालय, रिकार्डिंग, बुलेटिन तथा फलालैन बोर्ड, शैक्षिक खेलों के विवरण, नाटकीय, अभिनय की सन्दर्भ पुस्तिकाएं, भ्रमण व सरस्वती यात्राएं आयोजित करने के लिए आवश्यक निर्देश पुस्तकालय व्यवस्था होनी चाहिए।

सोशल मीडिया के प्रभाव से पुस्तकालय में दृश्य-श्रव्य सामग्री की उपयोगिता

पुस्तकालय के माध्यम से पाठकों को आत्मनिर्भर बनाना उसमें सामाजिक एवं नैतिक गुणों का विकास करना, पाठकों को अपने अंदर शिक्षा की अच्छी गुणवत्ता लाना, सन्तोष की भावना का विकास करना, सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करना आदि है। पाठकों को अपने सभी कार्यों को पूर्ण करने के लिए एकाग्रचित कार्य करना। पुस्तकालयों में विषय की विषयवस्तु को सरल व उपयोगी बनाने हेतु दृश्य-श्रव्य सामग्री का पाठकों के समक्ष प्रयोग किया जाना आवश्यक है क्योंकि दृश्य-श्रव्य सामग्री के द्वारा पाठक उन्हें निकट से देख सकते हैं। प्रदर्शन, नाटक, कहानी के नये रूप में उन्हे समझने के साथ-साथ रूचि पैदा होती है तथा मनोरंजन भी प्राप्त होता है। दृश्य-श्रव्य सामग्री में पाठक के कान व ऑख दोनों ही उपयोगी होती है। इससे पाठक की संवेदनायें अधिक क्रियाशील होती है।

सोशल मीडिया के माध्यम से दृश्य–श्रव्य अध्ययन सामग्री की वर्गीकरण–

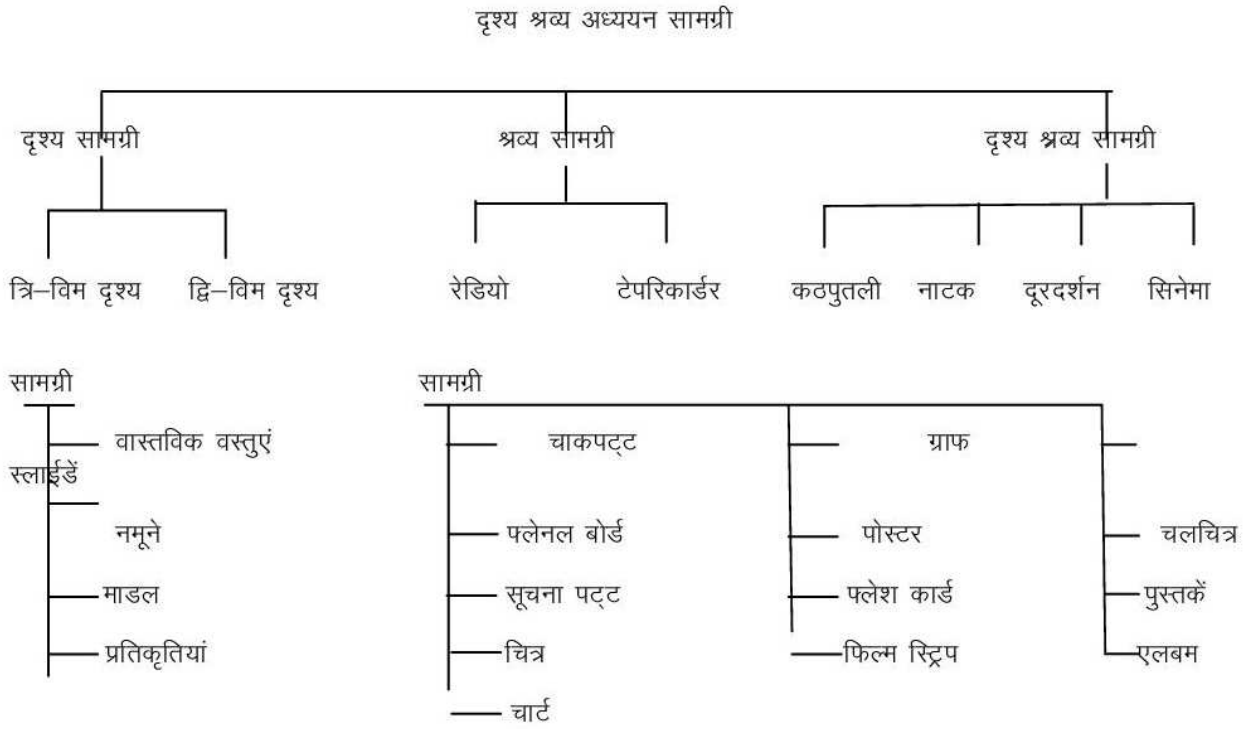

दृश्य-माध्यम से पुस्तकालय पर प्रभाव

प्रत्येक पाठक के जीवन में उसके विचारों एवं अनुभवों का एक बड़ा भाग दृश्य सामग्री का परिणाम है। यदि पाठक अपने जीवन में नये विचारों को ग्रहण करना चाहता है तो दृश्य सामग्री कर बड़ा योगदान रहता है। यदि पाठकों के समक्ष वास्तविक विषय के विषय वस्तुओं को प्रदर्षित किया जाना सम्भव नहीं है तो उसकी स्थापना विषय के विषय वस्तुओं को प्रदर्शित करके भी पुस्तकालय में उपयोग करने वाले पाठकों को अधिक प्रभावी बनाया जाता है।

मुख्यतः दृश्य अध्ययन सामग्री दो प्रकार की होती है :

1. *त्रि-विम अध्ययन सामग्री-* त्रि-विम अध्ययन सामग्री निम्न प्रकार की होती है; (अ) वास्तविक वस्तुएं-(Real Objecty), (ब) नमूने -(Specimen), (स) माडल -(Model), (द) प्रतिकृतियां- (Reptica).
2. *द्वि-विम अध्ययन सामग्री-* द्वि-विम अध्ययन सामग्री निम्न प्रकार की होती है :

1. *चार्ट्स (Charts)-* पुस्तकालयों में विषयवस्तु को चार्ट्स के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिसके माध्यम से विचारों अथवा शब्दों के माध्यम से कठिनाइयां हो। चार्ट के माध्यम से आसानी से व स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जात है।
2. *ग्राफ (Graph)-* सांख्यिकी को पाठकों के सामने रोचक रूप से प्रस्तुत करने हेतु ग्राफ का प्रयोग किया जाता है। यह पाठकों को समझने में सरल होते हैं।
3. *चित्र (Pictures)-* विषयवस्तु को चित्र के माध्यम से पाठकों को विषय का रूप प्रदान करके उनको अध्ययन के रूप में आसानी से प्रस्तुत किया जाता है। इसके माध्यम में विषय में रोचकता व विविधता प्रस्तुत करते हैं। कई विषयवस्तुओं का विवरण शाब्दिक व्याख्या द्वारा सम्भव नहीं होता उन्हें चित्रों द्वारा पाठकों को समझाया जा सकता है। वर्तमान में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों आदि से उपयुक्त चित्र प्राप्त हो जाते हैं। इन चित्रों का संकलन करके पाठकों के जरूरत के अनुसार इसका प्रयोग किया जाता है।
4. *फोटोग्राफी (Photography)-* वर्तमान समय में सभी क्षेत्रों में अधिकांशतः फोटोग्राफी का प्रयोग हो रहा है। पुस्तकालय के क्षेत्र में, कृषि के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में, वन सम्पदा के क्षेत्र में, व्यापारिक प्रतिष्ठानों के क्षेत्र में, फोटोग्राफ का प्रयोग उचित तथा महत्वपूर्ण माना जाता है। फोटोग्राफी पाठकों के उपयोग की वस्तु बन गई है। कैमरे से व्यक्तिगत तथा सामूहिक चित्रों को तैयार किया जाता है।

पाठक लोग महोत्सव सम्मेलन, सेमिनार, कान्फ्रेन्स, वर्कशाप, शैक्षिक भ्रमण, यात्राएं, विवाह, सांस्कृतिक कार्यक्रम, पत्रकारिता योजनाओं आदि के कार्यों का जीता जागता चित्रण फोटोग्राफी के माध्यम से किया जाता है।

शोध छात्र या छात्रा फोटोग्राफी के द्वारा समाज में रीति-रिवाज, रहन-सहन, सामाजिक गतिविधियों को सरलता से प्रदर्शित करते हैं। एक विद्वान ने कहा है कि, ''उचित रूप से दिखाया गया चित्र दस हजार शब्दों के बराबर होता हैं।''

फोटोग्राफी द्वारा खीचे गये चित्र भूतकालीन बातों को पुनः स्मरण दिलाते रहते है।

5. *पोस्टर (Posters)*- पाठकों को किसी विषय प्रचार एवं प्रसार करने के लिए पोस्टर के माध्यम से आसानी होती है। पोस्टर की उपयोगिता प्रसार शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके माध्यम से पाठकों के द्वारा मतदाता जागरूकता अभियान, पर्यावरण सुरक्षा अभियान जीव हत्या पाप है अभियान, मेला प्रदर्शनी आदि के साथ-साथ गांवों-गांवों, शहर-शहर, गली-गली, मुहल्ला-मुहल्ला सर्व शिक्षा अभियान का प्रचार एवं प्रसार पोस्टरों के माध्यम से किया जाता है। पोस्टरों के माध्यम से कार्यक्रमों के प्रति उत्सुकता जगती है तथा उनके अभिरूचि पैदा होती है।

6. *फ्लैश कार्ड (Flash Card)*- पाठकों के समूह को शिक्षित करने के लिए काफी पुराने समय से फ्लैश कार्ड का प्रयोग होता आ रहा है। इनके माध्यमों द्वारा शिक्षण देना उन क्षेत्रों में अधिक उपयोग होता है, जहाँ वार्तालाप के भाषा कुछ सीमा तक समस्या रहती है। फ्लैश कार्ड के माध्यम से कम शब्दों का प्रयोग कर जनता एवं पाठकों को सन्देश दिया जाता है। कहानी, वितरण, कार्य प्रणाली या कार्य पद्धति समझाने के लिए फ्लैश कार्ड शिक्षा का अच्छा माध्यम है।

7. *नक्शे (Maps)*- नक्शों का प्रयोग ऐतिहासिक तथा भौगोलिक तथ्यों तथा स्थानों का ज्ञान प्रदान करने के लिए पाठकों के समक्ष कक्षा एवं पुस्तकालय में किया जाता है। बहुत से शिक्षक यह सोचते हैं कि नक्शा एक लघु पृथ्वी के रूप में एक चित्र है। लेकिन यह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है क्योंकि चित्र तो सरल एवं अति स्पष्ट होता है। जबकि नक्शे किसी चित्र की तुलना में काफी जटिल होते हैं।

8. *मानचित्र (Diagram)*- पाठकों को या शोधार्थियों को किसी विषय से सम्बंधित चित्र दिखाना अथवा किसी विषयवस्तु को चित्र के माध्यम से प्रदर्षित करना ही मानचित्र कहलाता है। शुतुर्मुर्ग के बारे या डायनासोर के बारे में, किसी विचित्र जानवर के बारे में पाठकों को बताना उसके चित्र को दिखाकर उसके बारे में जानकारी प्रदान करना। मौखिक रूप से जानकारी प्रदान करने की बजाय चित्रों को दिखाकर बताना अधिक लाभप्रद है। इसके माध्यम से चिकित्सा विज्ञान के छात्रों या पाठकों शरीर के अनेक चित्रों के माध्यम से समझाने का कार्य किया जाता है। इसके माध्यम से चिकित्सा विज्ञान के पाठकों को इससे बहुत ही लाभ प्राप्त होता है।

9. *कार्टून्स (Cortoons)*- कार्टून पाठकों के मनोरंजन के लिए लोकप्रिय साधन है एवं छोटे बड़े, बूढ़े-बच्चे सभी में लोकप्रिय है। पाठक बरबस ही किसी भी कार्टून को कही भी देखकर आकर्षित हो जाते हैं। अतः कार्टून की पाठकों में इसी लोकप्रियता का लाभ उन्हें शिक्षित करने अथवा उन्हें किसी बात की जानकारी देने में किया जाना चाहिए। कार्टून हर वर्ग, हर उम्र, हसमुख, उदास, रोते- हस्ते हर व्यक्ति का ध्यान अपनी तरफ खीचने में सक्षम हैं। अतः किसी भी संदेश या जानकारी को कार्टून के द्वारा जनसाधारण में आसानी एवं शीघ्रता से पाठकों के सामने प्रसारित किया जाता है।

10. *कामिक्स (Comics)*- कामिक्स पाठकों की एक पसंदीदा पुस्तक होती है। पाठक लोग अपने विषय से हटकर इस पुस्तक में विशेष रूचि रखते हैं। पाठक अपने अध्ययन के समय के घंटों में कुछ समय कामिक्स के लिए अलग से समय देते हैं। इससे उनके मन पढ़ने की उम्मीद जगती है। कामिक्स एक चित्रमय लघु कथा होती है। जिसे काल्पनिक पात्रों एवं चरित्रों की सहायता से चित्रित किया जाता है, कामिक्स में कार्टून भी पात्रों की भूमिका निभाते हैं। कामिक्स में किसी कल्पना की गई कहानी, किसी लघु कथा, किसी चरित्र गाथा, किसी घटना वर्णन आदि को चित्रों की सहायता से पाठको के सामने प्रस्तुत किया जाता है, चित्रमय रूप से प्रस्तुत करने के कारण लोगों का यह आकर्षित करते है एवं उन पर विशेष ध्यान देते हैं।

11. *चाक-पट्ट (Chalk-Board)*- चाक-पट्ट को पहले श्यामापट्ट के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि इस पर काला रंगा रंगा जाता था, किंतु वर्तमान समय में इसे अनेकों प्रकार के रंगों से रंगा जाता है। विशेषकर हरे रंग से अतः इसे चाक-पट्ट के नाम से जाना जाता है। पुस्तकालयों में या अध्ययन कक्ष में पाठकों की विषय की विषयवस्तु को समझाने के लिए चाक-पट्ट का प्रयोग किया जाता है। यह पाठकों को अत्यधिक प्रभावित करने वाली सामग्री है। इस चाक-पट्ट पर पाठकों को अध्ययन के दौरान चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र, कठिन शब्द, व्याख्यान का सारांश आदि लिखा जाता है। इस पर लिखे हुए चित्र, रेखाचित्र, मानचित्र, कठिन शब्द, व्याख्यान का सारांश को आसानी से मिटाया जाता है।

12. *फ्लेनल बोर्ड (Flannel Board)*- आजकल फ्लेनल बोर्ड का उपयोग व प्रचलन दृश्य सामग्री माना जाता है और इसका प्रयोग पुस्तकालय, वाचनालय, अध्ययन कक्ष, सेमिनार हाल, इत्यादि जगहों पर किया जाता है। यह किसी लकड़ी या गत्ते के तख्ते पर लगा हुआ रोयेदार फ्लेनल का वस्त्र होता है। कपड़े का रंग काला, गहरा लाल, कत्थई, हरा आदि होता है। इस बोर्ड के उपर पाठकों को देखने और पढ़ने के लिए चित्रों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों से कटे हुए विशेष लेख, महत्वपूर्ण सूचनाएं, ग्राफ, लेख आदि लगाये जाते हैं।

13. *सूचना-पट्ट (Notice Board)*- साधारणतः सूचना पट्ट का धरातल फ्लेनल, फ्लाईवुड, हार्डवुड, या लिनोनियम का होता है। इसका धरातल इस प्रकार का होना चाहिए ताकि इसपे पिनें आसानी से लगायी व निकाली जा सके। इस सूचना पट्ट का प्रयोग पुस्तकालय,

वाचनालय, कार्यालय, अध्ययन कक्ष के बाहरी दीवाल पर इत्यादि स्थानों पर लगाया जाता है ताकि पाठकों को इस सूचना पट्ट पर व्यक्तिगत समाचार, विशेष सूचनाएँ, समाचार पत्रों में छपे लेख, फोटोग्राफी, रेखा चित्र, विज्ञापन आदि प्रदर्शित किया जाता है। इस बोर्ड को ऐसे स्थान पर स्थित करना चाहिए ताकि सभी को आसानी से दृष्टि हो सके। सूचनाओं को सूचना पट्ट पर आकर्षित व व्यवस्थित तरीके से लगाया जाता है।

14. *एलबम (Album)*- सभी कक्षाओं के पाठकों द्वारार एलबम तैयार किया जाता है। एलबम में पाठक अपनी यात्राओं का चित्र, सेमिनार में आये अतिथि का चित्र इत्यादि अपने याददाश्त के तैयार किया जाता है ताकि फिर कभी पाठक का मन पुराने बातों को याद करना है तो इस एलबम के माध्यम से अपने आप को ताजा कर सके।

15. *(अ) फिल्म स्ट्रिप्स (Film Strips)*- फिल्म स्ट्रिप के द्वारा शिक्षा से सम्बंधित विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं, खोजों तथा अन्य सूचनओं के विषय में, पाठकों को ज्ञान प्रदान किया जाता है। पाठक इनके प्रदर्शन में काफी रूचि लेते है और प्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। फिल्म स्ट्रिप में प्रत्येक विषय निश्चित क्रम में विस्तारपूर्वक, स्पष्ट ज्ञान देने वाला होता है। अतः इसके माध्यम से दिया गया पाठकों को ज्ञान अधिक स्थायी व प्रभावशाली होती।

(ब) फिल्म (Film)- फिल्में ज्यादातर दो प्रकार की होती हैं।

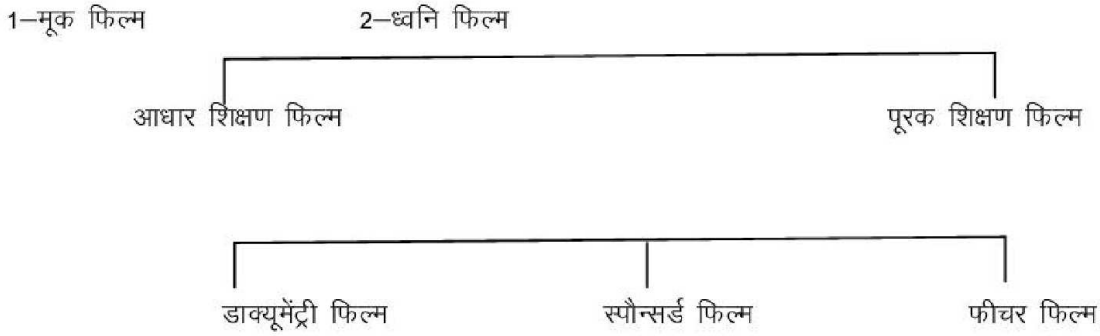

अ. आधार शिक्षण फिल्म- ये फिल्में मुख्यतः शिक्षण के आधार पर निमित ही बनायी जाती है।

ब. पूरक शिक्षण फिल्म- ये शिक्षण से सम्बंधित या पूरक होती है। जिनका प्रमुख उद्देश्य कुछ और होता है परन्तु शैक्षिक प्रत्ययों को स्पष्ट करने में सहायक होती है।

स. डाक्यूमेंट्री फिल्म- ये फिल्म वास्तविक जीवन की घटनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली विशेष थीम पर बनायी जाती है।

द. स्पौन्सर्ड फिल्म- ये किसी घटना या घटनाक्रम की पूर्ण पिक्चर प्रस्तुत करती है, जबकि उसका वास्तविक रूप से घटना सम्भव नही होता है। परन्तु से फिल्म पूरे घटनाक्रम को स्पष्ट करने वाली होती है।

य. फीचर फिल्म- ये साधारणतः ड्रामें, कार्टून, आदि के माध्यम से मनोरंजन के ध्येय से बनाई जाती है। परन्तु इनका शैक्षिक उपयोग कर लिया जाता है।

16. *स्लाईडे (Slides)*- अध्ययन क्षेत्र में स्लाईड का प्रयोग पाठकों के माध्यम से सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों के अध्ययन में काफी उपयोगी है। स्लाईडों को माईक्रोस्कोप के माध्यम से पाठकों को दिखाया जाता है। अधिकांश स्लाईड पाठकों के माध्यम से बनवाया जाता है।

स्लाइड के माध्यम से विषय की विषय वस्तु एवं चीजों की छोटी से छोटी बातों को प्रोजेक्टर के माध्यम से प्रदर्शित कर पाठकों के सामने प्रदर्शित किया जाता है। स्लाईड के प्रयोग से शिक्षक कठिन, जटिल तथा सूक्ष्म बातों को सरलता से पाठकों तक पहुचाने में समर्थ होता है। इनसे विभिन्न प्रकार की सूचना सम्बन्धी सूचनाएं पाठकों को प्राप्त होती है।

स्लाईड कई प्रकार की होती है- 1. लैण्टर्न स्लाईड, 2. सैलोफैन स्लाईड, 3. ग्लास स्लाईड, 4. फोटोग्राफिक स्लाईड।

17. *चलचित्र (Motion Picture)*- यह साधारणतः ड्रामे, कार्टून, आदि के माध्यम से पाठकों के मनोरंजन के ध्येय से चल चित्र बनायी जाती है; परन्तु इसका उपयोग शैक्षिक उपयोग के लिए किया जाता है।

प्रवक्ताओं, शिक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों, प्रोफेसर, डीन को चाहिए कि कक्षा में, सेमिनार हाल में, कान्फेन्स हाल में, अध्ययन कक्ष में केवल पाठकों को मनोरंजनार्थ चलचित्र न दिखाये। पाठकों को बहुत लम्बी चलचित्र उबाऊ और अनुपयोगी हो जाती है। अध्ययन कक्ष में चलचित्र का उपयोग करते समय सर्वप्रथम चलचित्र प्रदर्षित करनी चाहिए। वरन् इसका उपयोग पाठकों के विकास में करना चाहिए। यदि चलचित्र पुनरावृत्ति के लिए दिखायी जाय तो चलचित्र का वर्णन पहले प्रस्तुत करना उचित नही है। पाठकों को स्वयं ही चलचित्र से प्राप्त जानकारी प्राप्त करने के अवसर भी प्रदान करने चाहिए। चलचित्र से सम्बन्धित पाठकों को आवश्यकतानुसार विवरण नोट करने के लिए तथा निरीक्षण करने के लिए प्रेषित किया जाना चाहिए। तभी वे इस विद्या का ज्यादा से ज्याद अच्छा उपयोग कर सकेंगे। चलचित्र के माध्यम से बहुत सी प्रक्रियाओं की जानकारी पाठकों को प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से मिलती रहती है। चलचित्र के चयन के समय प्रवक्ताओं को, सूचना विज्ञान के प्रोफेसरों

को, अध्यापकों को ध्यान रखना चाहिए कि वे विषय की विषयवस्तु से सम्बंधित हो, शिक्षा का एकीकृत अंग हो। अच्छी भाषा शैली तथा ध्वनियुक्त हो। चलचित्र पाठकों की आयु मानसिक स्तर तथा रूचि के अनुकूल होनी चाहिए। चलचित्र पाठकों की जिज्ञासा उत्पनन करने वाली उचित अनुपात में चित्र प्रस्तुत करने वाली तथा कल्पना शक्ति का विकास करने वाली होनी चाहिए।

18. *पुस्तकें (Books)*- पुस्तकें एक मुद्रित अध्ययन सामग्री हैं, जिसका प्रयोग पाठक, शिक्षक, विभिन्न प्रकार के अध्ययन शिक्षण में किया जाता है। पुस्तकों को ग्रन्थ के नाम से भी जाना जाता है। ये पुस्तकें कई प्रकार की होती है; 1- पाठ्य पुस्तकें (Text Books), 2- पूरक पुस्तकें (Supplementary Books), 3- सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books), 4- सामान्य पुस्तकें (General Books).

19. *मुद्रण माध्यम (Print Media)*- छपाई माध्यम भी संचार का एक सशक्त माध्यम है। इसके माध्यम से हम कम समय में अधिक लोगों तक, पाठकों तक अपनी बात पहुचायी जाती है एवं छपाई माध्यम का प्रभाव भी लोगों पर अधिक शीघ्रता से पाठकों के उपर असर पड़ता है। पाठक इस पर विश्वास अधिक करते हैं।

छपाई माध्यम में दो तरीके होते है। छोटे समूह तक भेजने के लिए जहां पम्पलेट, लिफलेट आदि प्रभावी एवं सस्ते उपाय है, वही पाठकों के बड़े समूह तक अपन बात पहुचाने के लिए समाचार पत्र जर्नल, या शोध पत्रिकाएं, कार्यपुस्तकें, शब्दकोश, इन्साइक्लोपीडिया, एटलस आदि कारगर उपाय हैं।

(क) समाचार पत्र (News Paper)- समाचार पत्र जनसम्प्रेषण का एक शक्तिशाली साधन है। अधिकतर शिक्षित व्यक्ति समाचार पत्र पढ़ते हैं। ये रेडियो अथवा टेलीविजन पर समाचार सुनने के पश्चात भी समाचार पत्र पढ़ते है क्योंकि समाचार पत्रों में प्रत्येक समाचार का विस्तृत विवरण दिया गया होता है। एक अच्छा समाचार पत्र देश में घटित होने वाली खबरों का सही, सटिक तथा सन्तुलित विवरण प्रस्तुत करता है। समाचार पत्रों में पाठकों को पढ़ने के लिए विभिन्न', जैसे- शिक्षा, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, खेल, सम-सामयिक घटनाएं, आदि विभिन्न विषय पर भी सामग्री मिलती है। समाचार पत्रों में समाचारों के अतिरिक्त विभिन्न टापिक्स (Topics) पर लेख तथा कथाएं आदि भी प्रकाशित होती हैं। इस प्रकार से समाचार पत्रों के माध्यम से पाठकों को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है।

(ख) जर्नल (Journal)- जर्नल विभिन्न संस्थानों एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित शोध पत्रिकाएं होती हैं, जिनमें विषय विशेष पर नवीनतम शैक्षिक प्रपत्र, तथा शोध प्रपत्र प्रकाशित किये जाते हैं। इसका अध्ययन करके पाठक या शोधार्थी अपने विषय में नवीनतम घटनाओं, अविष्कारों, सिद्धान्तों, खोजों तथा प्रयोग के बारे में विस्तृत विवरण प्राप्त करता है। इस प्रकार पाठक एवं शोधार्थी स्वयं को अप टू डेट (Up to date) रखता है।

(ग) कार्य पुस्तकें (Work Book)- कार्य पुस्तकें या वर्कबुक एक निश्चित उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए तैयार की जाती है। वर्क बुक में पाठकों के करने के लिए विभिन्न कार्य दिये गये होते हैं। जिन्हें पाठक करने के पश्चात उन कार्यों में दक्षता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। ये कार्य विभिन्न विषयों के विभिनन प्रकरणों से सम्बंधित होते हैं।

वर्कबुक पाठकों में अध्ययवसाय, ईमानदारी, परिश्रम तथा आत्म विश्वास के गुण विकसित करती है तथा विषय वस्तु को स्पष्ट करने में मदद करती है। वर्कबुक पाठकों के ज्ञान में वृद्धि करती है तथा उन्हें दक्षता एवं कौशल प्रदान करती है।

(घ) शब्दकोश (Dictionary)- शब्दकोश में हजारों लाखों शब्दों के अर्थ दिये गये होते हैं। कुछ शब्दकोषों में शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए चित्रों की सहायता भी ली जाती है।

(ङ) इन्साइक्लोपीडिया (Encyclopaedia)- सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में इन्साइक्लोपीडिया एक विशेष सन्दर्भ ग्रन्थ है। जिससे किसी भी चीज के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

(च) एटलस (Atlas)- एटलस एक ऐसी पुस्तक है जिसमें बहुत से नक्शे होते है। लेकिन एटलस नक्शे की पुस्तक से बहुत ज्यादा कुछ होती है। ये तो वास्तव में नक्शों के सहित भूगोल का इन्साइक्लोपीडिया होता है अथवा भूगोल का यह एक प्रकार से शब्दकोश होता है जिसमें विभिन्न स्थानों के नाम पहाड़, नदियां, समुद्र आदि के विषय में ज्ञान पाठकों को प्राप्त होता है।

20. *वाल न्यूज पेपर*- रिसर्च से सम्बन्धित भारतीय काउंन्सिल एवं सामुदायिक विकास मंत्रालय ने भारत शासन ने नवीन सूचनाओं एवं सूचनाओं को समझाकार प्रकाषित करने हेतु वाल न्यूज पेपर का निर्माण किया है। ये ग्रामीण जनता एवं पाठकों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुए है। किसी भी सूचनाओं को आम जनता तक प्रचार करने के लिए पाठकों से इस प्रकार वाल न्यूज पेपर का निर्माण कार्य भी कराया जाता है। वाल पेपर का निर्माण करते समय निम्न बातों का ध्यान दिया जाना चाहिए; ♦ समाचार में नवीनता होनी चाहिए। ♦ समाचार पाठकों लिए उपयोगी होने चाहिए। ♦ समाचार आकर्षक एवं कहानी के रूप में होनी चाहिए। ♦ पाठकों को समझाने लिए चित्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए। ♦ भाषा सरल एवं ग्राह्य होनी चाहिए। ♦ स्माचार हेतु स्थानीय भाषा प्रयोग होनी चाहिए। ♦ लेखन स्पष्ट एवं पठनीय होनी चाहिए। ♦ द्वि-अर्थीय शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। ♦ सकारात्मक लेखन किया जाना चाहिए। ♦ समाचार सत्यता से परिपूर्ण होनी चाहिए।

वाल न्यूज पेपर लगाते समय निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए; ♦ सम्पूर्ण ग्राम या शहर चारो तरफ से देखे जाने वाले स्थानों पर लगाया जाना चाहिए। ♦ जिस स्थान पर जनसमूह एकत्रित होता हो, उसी स्थानों पर वाल न्यूज पेपर लगाया जाना चाहिए। ♦ जहाँ पर हवा एवं वर्षा से उसका बचाव हो सके उस जगह लगाया जाना चाहिए। ♦ जिन स्थानों पर लोग आते-जाते हो वहा लगाया जाना चाहिए। ♦ वाल

न्यूज पेपर को महत्वपूर्ण बिन्दुओं के अनुसार क्रमवार लगाया जाना चाहिए। ♦ आसानी से पठनीय हो,इतनी दूरी पर उन्हे चिपकाया जाना चाहिए।

22. *पत्र, लघु, पत्र एवं बुलेटिन, पत्र 4-12 पेज के होते है।* इनके द्वारा संक्षिप्त महत्वपूर्ण सामयिक सूचनओं का प्रसार किया जाता है। ये केवल साक्षर या पाठक व्यक्तियों के लिए ही उपयोगी होते है। यदि किसी महत्पूर्ण विषय पर जानकारी उपलब्ध करायी जानी हो, तो इसका प्रयोग किया जाता है। पत्र के माध्यम से एक संक्षिप्त कथा के रूप में कार्य प्रक्रिया को समझाया जाता है। जैसे- बीजों का उपचार, फसल उगाने के नवीन तरीके इत्यादि।

यह पत्र से कुछ बड़ा होता है। इसमें अधिक जानकारी उपलब्ध की जाती है। यह 12-14 पेज का होता है। इसमें एक ही विषय के कुछ बिन्दुओं पर चर्चा की जाती है। इसे पाठक वर्ग में सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इन्हें तैयार करते समय भी पत्रक बनाते समय ध्यान रखने वाले बिन्दुओं पर विचार किया जाना चाहिए।

ये 24-48 पेज के या इससे भी अधिक विस्तृत हो सकते हैं। इनका प्रयोग भी शिक्षित वर्ग एवं पाठक वर्ग करते है इसके माध्यम से प्रयोग की जाने वाली सामग्री, रोचक, पठनीय, वास्तविक व उपयोगी होनी चाहिए। बार-बार एक ही बात का उल्लेख नही किया जाना चाहिए।

23. *परिपत्र (Circular Letter)*- परिपत्र के सामान्य भाषा में गस्ती चिट्ठी के नाम से जाना जाता है। इसके माध्यम से सूचनाओं तथा संदेशों को अनेक व्यक्तियों तक एक साथ पहुचाया जा सकता है। किसी आयोजन से सम्बन्धित सूचनाएं तथा नियत्रण भी इसी माध्यम द्वारा ग्रामीणों तक पहुचाये जाते है। कार्यकर्ता द्वारा भेजे गये परिपत्रों का गहरा प्रभाव लोगों पर पड़ता है तथा वे कार्यक्रम अथवा आयोजन में अपनी भूमिका के प्रति सुनिश्चित होकर अपने कर्तव्य पालक के निर्मित सचेष्ट हो जाते हैं। लिखित सूचनाओं का अपना एक अलग महत्व होता है। सुनी हुई बातें प्रायः लोग भूल जाते है, किन्तु लिखित सूचनाओं को बार-बार पढ़कर सूचना जान सकते हैं। लिखित सूचनाओं को अधिक विश्वसनीयता के साथ ग्रहण भी किया जाता है। जो लोग पढ़े-लिखे नही होते, उनके लिए भी परिपत्र का महत्व होता है। पत्र पाकर वे स्वयं को महत्वपूर्ण समझते हैं तथा अपने अस्तित्व के प्रति आस्थावान हो जाते है।

24. *विज्ञान वाटिका (Science Museum)*- विज्ञान वाटिका के अभाव में विज्ञान शिक्षण कभी भी सफल नही हो सकता। जिन विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में स्थान का अभाव हो, वहां पर गमलों में, क्यारियों में भी आवश्यक पौधे लगाकर पाठकों को पढ़ाया जा सकता है। विज्ञान वाटिका में जीवों के माध्यम से पाठकों को अध्ययन के लिए जल, थल, तथा वायु जीवशालाओं की भी स्थापना की जा सकती है। वनस्पति विज्ञान में विभिन्न वर्गीकरण, पौघों की क्रियाएं, पौधों की रचनाएं, आदि से सम्बन्धित पाठ सफलता से पढ़ाये जा सकते है। इसी तरह पौधो की प्रकृति, बीजों का प्रसरण, अंकुरण, गर्भाधान, आदि प्रकरणों का प्रयोगात्मक शिक्षण पाठकों को वाटिका के द्वारा प्रदान किया जाता है। वाटिका में फूलदार पौधे पानी में उगन वाले पौधे, कुछ छाया वाले पौघे तथा पाठ्यक्रम के अनुसार विशेष प्रकार के पौधों को लगाकर पाठकों को शोध छात्रों को प्रयोगात्मक कार्य एवं अध्ययन कार्य किया जाता है। वाटिका की अवस्था को बताने में पाठकों को एवं शोध छात्रों को सक्रिय रूप से कार्य करना चाहिए। इन सब कार्यों को सोशलन मीडिया के माध्यम से छात्रों, पाठकों, शिक्षित व्यक्तियों एवं शोध छात्रों तक पहुचाने का कार्य किया जा सकता है।

25. *संग्रहालय तथा प्रदर्शनी (Museum and Exhivition)*- सोशल मीडिया के प्रयास से विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक उपकरण, पौधे और जीव-जन्तुओं के अंगों की पहचान, जन्तुओं की पहचान एवं उनकी विशेषताएं पाठकों को, छात्रों को एवं शोध छात्रों को प्रदान करायी जाती है। इसके लिए विद्यालय में, विश्वविद्यालय में, अनुसंधान केन्द्रों पर आवश्यक पौधों, जीवों तथा उपकरणों का वास्तविक ज्ञान संग्रहालय की स्थापना करके दिया जा सकता है। एक सुनियोजित संग्रहालय द्वारा विज्ञान की सूक्ष्म बातों का ज्ञान पाठकों, छात्रों को एवं शोध छात्रों को जानकारी प्रदान करायी जाती है और शिक्षण कार्य एवं प्रयोगात्मक कार्य दोनों रूचिकर बनाने का प्रयास किया जाता है। इसके माध्यम से पाठकों एवं शोध छात्रों को अध्ययन एवं प्रयोगात्मक कार्य के क्षेत्र में अधिक लाभ प्रदान होता है- ♦ शिक्षण को सरल, रोचक तथा सत्यता के पास लाता है। ♦ इससे अनेक बातों का अपरोध तथा अधिक स्पष्ट एवं स्थायी ज्ञान मिलता है। ♦ विभिन्न वस्तुएं देखने से जिज्ञासा बढ़ती है तथा बालक, पाठक, व शोध छात्र विद्यालय, विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्रों के बीच उत्तम भावनाएं रहती है। ♦ छात्रो, शिक्षित व्यक्तियों, पाठकों, शोध छात्रों की निरीक्षण शक्ति में विकास होता है। ♦ छात्रों, शिक्षित व्यक्तियों, शोध छात्रों की, संग्रह करने की स्वभाविक प्रवृत्ति को विकसित किया जा सकता है। ♦ पशुओं के अस्थिपंजर देखने से मानव की रचना का पाठकों को तुलनात्मक ज्ञान होता है।

प्रदर्शनी का आयोजन किसी विशेष दिवस, विशेष अवसर पर किसी विषय से सम्बंन्धित हो सकता है। प्रदर्षनी में सामान्यतः श्रव्य दृश्य सामग्री के शैक्षिक उपयोग पर अधिक बल दिया जाता है। जिन वस्तुओं के बारे में हम किताबों में पढ़ चुके है उनका प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्रदर्षनी के आयोजन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। प्रदर्षनी का आयोजन छात्र, पाठक, शोध छात्र, शिक्षक एक साथ मिलकर सरलता से किया जा सकता है। इसमें वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, फिल्म प्रदर्षन, अतिथि व्याख्यान आदि का आयोजन भी समय-समय पर किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कुलश्रेष्ठ, एस0पी0 एवं सिंघल, अनुपमा (2012)- शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा

जैन, रंजना, (2010)- शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रोद्योगिकी, आर0एस0ए0 इंटरनेशनल, आगरा

पाटनी, डा0 मंजू (2007)- प्रसार एवं संचार, शिवा प्रकाशन इंदौर

सिंह, शंकर (2000)- कम्प्यूटर और सूचना तकनीकी, दिल्ली पूर्वांचल प्रकाशन

शर्मा, डा0 पाण्डेय, एस0के0(1996)- कम्प्यूटर और पुस्तकालय, नई दिल्ली ग्रन्थ अकादमी

NAIR, R. RAMAN (1999); Internet For Library And Information Science Services. New Delhi: Ess Ess Publication.

SUBBARAO,V. SHASHIKALA (1999); Library Management, Through Automation And Networking, Bombey : Alied Publication Ltd.

VISHWANATHAN, T.(1992); Telicommunications Switching System And Networks. New Delhi : Prentice hall.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,37-39
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 दिसम्बर 2015

21वीं सदी के भारत के लिये विदेश व सामरिक नीति

अर्चना सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *21वीं सदी के भारत के लिये विदेश व सामरिक नीति* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

यह सच है कि भारत महाशक्तियों, मित्र राष्ट्रों और पड़ोसी देशों के अतिरिक्त समस्त विश्व से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हमेशा से प्रयासरत रहा है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के बदलते समीकरणों में यदि कोई राष्ट्र किसी राष्ट्र के प्रति आक्रान्त दृष्टिकोण (Offensive Attitude) रखता है तो राष्ट्रीय सुरक्षा स्ट्रैट्जी (National Security Strategy) की पहली माँग यह है कि राष्ट्र इतना सशक्त हो कि इसका मुकाबला अपने स्तर पर करने की क्षमता रखे; और राष्ट्र की क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि सुरक्षा से सम्बन्धित रणनीति कितनी मजबूत (Strong) है। अगर देखा जाए तो भारत आज अपने इतिहास के निर्णायक मोड़ पर है पिछले दशकों में हुए महत्वपूर्ण बदलावों ने भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज को बुनियादी रूप से बदल दिया है। भारत आज 8 फीसदी के प्रतिवर्ष के वार्षिक विकास दर के साथ विश्व की एक प्रमुख उभरती शक्ति बनने को तैयार है। इन परिवर्तनों ने इतिहास में पहली बार इस संभावना को जन्म दिया है कि भारत एक समृद्ध और न्यासंगत समाज बन सकता है। इसी विशालता व कामयाबी के कारण ये न सिर्फ पूरी दुनिया पर अपनी अमिट छाप छोड़ेगा, बल्कि मानवता के भविष्य की संभावनाओं की दशा-दिशा भी तय करेगी।

विश्वभर में भारत की ताकत का बुनियादी स्रोत अपनी तरह की मिसाल कायम कर रहा है। यदि भारत अपनी विकास दर को ऊँचा रख सका और उसका इस्तेमाल अपने तमाम नागरिकों की आर्थिक क्षमता को बढ़ाने में कर सका, यदि वह लोक-तान्त्रिक परंपराओं व संस्थाओं को और मजबूत बना सका तो उसकी वैश्विक भूमिका और हैसियत को बढ़ने से कोई नहीं रोक सकेगा। इसलिए भारत की सफलता की बुनियाद इसके विकास मॉडल पर ही निर्भर करेगी।

यदि विकास का हमारा मॉडल कामयाब होता है, तो इससे दुनियाभर में हमें अधिक वैधता मिलेगी साथ ही यह हमारे अपने बूते पर आगे बढ़ने के विश्वास को भी बढ़ाएगा, जिससे हम वैश्विक स्तर पर अपने मूल्यों और हितों को आगे बढ़ा सकेंगे। सामयिक परिदृश्य में भारतीय रणनीति के लिए दो निहितार्थ हैं। प्रथम, किसी भी स्थिति में भारत को अपनी घरेलू विकास दर,

* शोध छात्रा, राजनीतिविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : Archanasinghbhu2012@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सामाजिक समावेशीकरण और राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में नहीं डालना चाहिए। हमें अपने आर्थिक विकास के लिए इसे वैश्विक स्तर पर सभी मुमकिन संभावनाओं का दोहन करना चाहिए और सुदृढ़ता के साथ अपनी जगह सुनिश्चित करनी चाहिए।

लेकिन वर्तमान समय में अस्थिर वैश्विक वातावरण में आर्थिक विकास के बावजूद भारत को नई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ेगा। इसलिए आवश्यकता इस बात कि है कि भारत विकास व सुरक्षा संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए किस तरह से विदेश व सामरिक नीति को परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित करेगा। अगर देखा जाए तो इन चुनौतियों के अतिरिक्त भारत की आर्थिक तरक्की के नजरिये से काफी अनुकूल महौल है। इसके कई महत्वपूर्ण पक्ष है, मसलन, भारत की जनांकिकी (Demography), शिक्षा का बढ़ता स्तर, औद्योगिक व तकनीकि विकास, तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था, घरेलू उद्यमिता का उठ खड़ा होना, लोगों की मौलिकता, मूलभूत रूझान (Underlying Trends), भारत की तरक्की की संभावना को मजबूत आधार देते हैं और इसे प्रतिस्पर्द्धात्मक लाभ की स्थिति में ले जाते है, जिसके सहारे आने वाले कुछ वर्षो में विकास की रफ्तार को बनाए रखा जा सकता है। द्वितीय, हमारी भावी संभावनाएं एक तय रास्ते से ही आगे बढ़ने वाली हैं। यदि एक बार हमने विकल्प चुन लिया और विकास का रास्ता तय कर लिया, तो बाद में उसे बदलना आसान नहीं होगा। इसलिए हम जो भी विकल्प अभी चुनते हैं, वे बहुत ज्यादा नहीं, फिर भी दशकों की संभावनाओं की दिशा तय करेंगे। इसके साथ ही भारत को अपनी विदेश व सामरिक नीति को मजबूत स्थिति में लोने के लिए 'मिडिल इनकम ट्रेप' (जब विकास दर काफी तेजी से ऊपर उठती है और फिर औंधे मुँह गिर जाती हैं) से बचने के लिए सभी मोर्चो पर निर्णायक कदम उठाना होगा; और साथ ही अपनी क्षमताओं के अपुरूप प्राथमिकताएं तय करनी होगी व प्रभावी ताकत के निर्माण में छोटे-बड़े सभी तत्वों की भूमिका को स्वीकार करना होगा। इन सभी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सर्वश्रेष्ठ व स्पष्ट रणनीति बनानी होगी और समय-समय पर उनकी समीक्षा व गहराई से विश्लेषण करना होगा तभी भारत सामयिक परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अनुकूलन बैठा सकता है।

भारत के नीति-निर्माताओं के स्त्रातेजी कवायद का मूल उद्देश्य यही होना चाहिए कि भारत जब भी बाहरी ताकतों के साथ सम्बन्धों को रचनात्मक ढंग से आगे बढ़ाये तो उसके पास ज्यादा से ज्यादा विकल्प हों। तभी भारत की स्वतंत्र एजेंसियों की क्षमता व घरेलू उद्यमिता के विकास को सक्षमता के साथ आगे बढ़ाने में मदद मिलेगा।

बदलती हुई परिदृश्य में इस तरह का दृष्टिकोण गुट-निरपेक्षता के दो प्रमुख लक्ष्यों को बचाए व बनाए रखेगा। इसलिए इन नीति को 'गुटनिरपेक्षता-2.0' के रूप में दर्ज किया जा सकता है, यानि आज के परिस्थितियों के मुताबिक उन मूलभूत (बुनियादी) सिद्धान्तों का पुनर्निर्धारण, जिन्होंने स्वतन्त्रता के बाद भारत की विदेश नीति को सकारात्मक दिशा दी। शीत युद्ध के समय गुट निरपेक्षता का मुख्य लक्ष्य यह सुनिश्चित करना था कि भारत गुटो, विचारधाराओं व लक्ष्यों के आधार पर वैश्विक राजनीति में अपने हितों को नहीं बांधे, उसने अपनी विकास के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आपसी सामरिक स्वायत्तता (Strategy Atonomy) बनाए रखी और विश्व व्यवस्था (World order) को अधिक से अधिक न्यायपूर्ण व सहयोगात्मक बनाने के लिए अपनी राष्ट्रीय क्षमता व हितों को आधार बनाया।

अब वर्तमान वैश्विक बदलते परिदृश्य में भारत को जिस गुट-निरपेक्ष नीति पर चलना है वह समय के साथ काफी परिवर्तित हो चुकी है। आज 21वीं सदी में विश्व व्यवस्था के अन्तर्गत शक्ति के बहुकेन्द्र स्थापित हो रहे है वहाँ गुट-निरपेक्ष नीति को दो प्रभावी शक्तियों के बीच बटी दुनिया के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। एक तरफ जहाँ चीन और अमेरिका महाशक्ति के केन्द्र बने रहेंगे, वहीं दूसरी ओर शक्ति के कई अन्य केन्द्र भी अस्तित्व में होंगे जो क्षेत्रीय मामलों के साथ-साथ राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी प्रासंगिक व प्रभावी होंगे।

ऐसी स्थिति में भारतीय विदेश व सामरिक नीति का मूलभूत फोकस एक मजबूत अर्थवयवस्था को स्थापित करते हुए विकसित व विकासशील देशों के मध्य एक तरह के सेतु का काम करना होगा। और आर्थिक तरक्की के लिए बाहरी दुनिया के साथ व्यापार, श्रम, तकनीकी और विचार, सभी स्तरों पर हमें बेहतर आर्थिक संबंध बनाने की जरूरत है। भारत को इस हकीकत को समझते हुए कई स्तरों पर एक खुली वैश्विक व्यवस्था बनाए रखने की कोशिश करनी होगी।

वर्तमान समय में देखा जाए तो भारतीय हितों का विस्तार हो रहा है और जिन हितों की दुनिया के विभिन्न हिस्सों में वकालत की जा रही है, वे कई तरह के कारकों से निकलकर सामने आ रहे हैं। उदाहरण के लिए ऊर्जा और अन्य प्रमुख

प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की जरूरत, भारतीय कामगारों के अधिकारों की रक्षा की जरूरत, खुली शिपिंग लाइंस यानि खुली समुद्री रास्ते बनाए रखने की बाध्यताएं, विदेशों से भारत में निवेश सुनिश्चित करने और विदेशों में भारतीय निवेश की सुरक्षा, विभिन्न देशों के साथ व्यापारिक संबंध बनाने और उसे बनाए रखने की जरूरत जैसे तमाम कारकों से इन दिनों हमारे हित निर्देशित हो रहे हैं।

21 वीं सदी में जो महत्वपूर्ण तत्व अन्य राष्ट्रों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने और हमारी राष्ट्रीय ताकत को परिभाषित करने के लिए अहम है, वह है ज्ञान और ज्ञान का उत्पादन, खासकर उन्नयन और ज्ञान के नए रूपों को सामने लाने की हमारी क्षमता। उपलब्ध संसाधनों और वैश्विक बाजारों की प्रतिस्पर्द्धा के आलोक में सतत् आर्थिक विकास काफी हद तक वैज्ञानिक और तकनीकि प्रगति, मानवीय पूंजी के विकास, कौशल विकास के दायरे में अधिक से अधिक लोगों को लाने और कामकाजी आबादी को तकनीकि विशेषज्ञता से संवारने पर निर्भर करेगा। इसके लिए जरूरी है कि शोध और शिक्षा से जुड़ी बुनियादी संरचनाओं का ऊपर से लेकर नीचे तक विस्तार किया जाए और उसे अधिक से अधिक मजबूत भी बनाया जाए। क्योंकि भारत की मौजूदा आर्थिक जरूरतें, मानवीय पूंजी निर्माण और तकनीकि ज्ञान के विकास और विस्तार संबंधी जरूरतों से हमारी मौजूदा विदेश और सामरिक नीतियां प्रेरित और निर्देशित हो रही हैं।

इसलिए महज ताकत की दौड़ में शामिल होने से बेहतर है कि हम आर्थिक और बौद्धिक दोनों मामलों में अपने राष्ट्रीय हितों की जटिलताओं से निपटने के लिए एक उचित, सार्थक, प्रभावी और सहयोगपूर्ण राष्ट्रीय रणनीति अपनाएं। अपने रणनीतिक विकल्पों के नीतिगत विश्लेषण शोध और रचनात्मक बौद्धिक विमर्श के लिए हमें एक रणनीतिक संस्कृति विकसित करने की जरूरत है।

भारत के साथ एक बड़ी सकारात्मक स्थिति यह है कि पड़ोस व कुछ देशों को छोड़कर इसे वैश्विक स्तर पर खतरे के रूप में नहीं देखा जाता है। भारत को एक ऐसी शक्ति के रूप में देखा जाता है जिसका अनुसरण कई देश करना चाहते हैं। ऐसे में जरूरत है कि हम अपने प्रति दुनिया के इस सकारात्मक दृष्टिकोण को प्रभावी तरीके से अपनी बेहतरी के लिए इस्तेमाल करें।

भारत की विदेश और सामरिक नीति के सफलता के लिए एशियाई देशों के साथ आर्थिक क्रियाकलापों के हर स्तर पर सहयोग बढ़ाना बेहतर होगा। इस दिशा में भारत की पूरब की ओर देखों नीति और एशिया में मुक्त व्यापार समझौते की वकालत महत्वपूर्ण कदम है। इसके साथ ही भारत को सामुद्रिक रणनीति (Maritime Strategy) को भी प्रभावशाली बनाना होगा। सारांशतः कह सकते हैं कि भारत हर परिस्थितियों में सफलता के साथ विकास के मार्ग पर निरन्तरता बनाये रखने व चुनौतियों का सामना करने व अपनी वैदेशिक व सामरिक नीति को सुदृढ़ करने के लिए एकरेखीय व एकपक्षीय नीति से बचना होगा। भू-रणनीतिक स्तर पर और भू-राजनैतिक प्रकृति में क्षेत्रीय विविधताओं के कारण इसे केन्द्रीय और परिधीय दोनों पड़ोसियों से अलग-अलग तरह से निबटना होगा, राष्ट्रों के साथ रचनात्मक संबंध स्थापित करने के लिए न सिर्फ द्विपक्षीयता बल्कि बहु-पक्षीयता के सिद्धान्त को भी समान रूप से लागू करना होगा, और साथ ही साथ भारत की रणनीतिक सफलता इसके घरेलू आर्थिक स्थिति, भ्रष्टाचार के मुद्दे से निबटने, आतंकवाद, अलगाववाद, राजनीतिक अस्थिरता, नक्सलवाद जैसी आन्तरिक चुनौतियों पर अंकुश लगाने और ऊर्जा जरूरतों में घरेलू स्तर पर मजबूती पर निर्भर करेगा।

Bibliography

Dixit, J.N. (2003); *India's Foreign Policy,* New Delhi,

Varghese, Alengaden (2009); *India The Super Power,* Sonbun Publishers, New Delhi,

खन्ना, वी0 एन0 एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2008)- *भारत की विदेश नीति,* नई दिल्ली

यादव, आर0 एस0 (2005)- *भारत की विदेश नीति : एक विश्लेषण,* इलाहाबाद,

देवराजन, शांतायानन और इजाज नबी (2006) -इकोनॉमिक ग्रोथ इन साउथ एशिया : प्रॉमिसिंग, अनक्वलाइजिंग, सस्टेनेबल इकोनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, पृ-ठ-3573-3580

Khilnani, S. (et.al.) (2012); *Nonalignment 2.0 : A Foreign and Strategic Policy For India in the twenty first century.*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,40-42
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अक्टूबर 2015

प्राचीन भारत में मानवाधिकार : एक अध्ययन

यश कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारत में मानवाधिकार : एक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *यश कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रस्तावना

मानव अधिकार शब्द एवं अवधारणा आधुनिक काल की देन है मगर मानव अधिकार का विचार एवं सिद्धान्त प्रत्येक संस्कृति में सभ्यता के प्रारम्भ से ही विद्यमान रहा है। भारतीय संस्कृति में भी मानवाधिकार का विचार एवं सिद्धान्त प्रारम्भ से विद्यमान रहा है। वर्तमान भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कृतियों एवं सभ्यताओं का एक मिश्रण है, जिसका प्रारम्भ वैदिक काल में होता है। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार ''हिन्दू चिन्तन के सबसे प्राचीन एवं सबसे आधुनिक रूपों में लगभग तीन हजार साल से एक अकाट्य निरन्तरता विद्यमान है।''[1] भारतीय संस्कृति का आधार ''धर्म'' है, जो सर्वकल्याण के विचार पर आधारित है। यही धर्म की अवधाणा भारतीय संस्कृति की मानव अधिकरों के प्रति संवेदनशीलता की प्रतीक है। हमारी भारतीय संस्कृति अध्यात्म आधारित है। अध्यात्म के धरातल पर भौतिकता की प्राप्ति ही इसका मूल उद्देश्य है।

भारतीय संस्कृति अपने समग्र दृष्टिकोण एवं विशिष्ठता के लिये सुविख्यात है। वह अपने समग्र दृष्टिकोण को इस तरह व्यक्त करती है, ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः/ सर्वे भद्राणि पश्पन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत।''[2]

इस तरह सर्वकल्याण एवं सर्वहित की कामना हमारे मनीषियों ने सभ्यता के शुरूआत से ही कर रखी थी। सर्वमंगल एवं सर्वहित की कामना से युक्त हमारी भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति के समक्ष एक अनुपम मिसाल बनकर कायम है।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से प्राचीन भारत का आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है। जिस काल में इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ उसे ऋग्वैदिक काल कहते हैं। भारत में मानवाधिकार के विचार हमें ऋग्वैदिक काल से ही प्राप्त होने लगते है। ऋग्वेद में तीन सिविल अधिकारों की बात कहीं गयी हैं तन, स्कृधि और जीभासी। प्राचीन काल में ऋग्वेद में एक ऐसे समाज की बात कही गयी है, जिसमें मनुष्य की समानता, प्रतिष्ठा, भाईचारे और सभी के सुख प्राप्ति का वर्णन है।

* शोध छात्र, राजनीतिविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : yash16488@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऋग्वेद में कहा गया है ''सभी मनुष्य भाई हैं कोई बड़ा-छोटा नहीं हैं। इस प्रकार सभी समान है।''[3] सर्वधर्म समभाव भारतीय संस्कृति का मार्गदर्शी सिद्धान्त है। अतः भारतीय धर्मिक ग्रन्थों में उच्च मानवीय मूल्यों को स्थान दिया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है ''आ नो भद्राः क्रृतवों यन्तु विश्वतों''[4] अर्थात् श्रेष्ठ एवं सकारात्मक प्रभाव सब दिशाओं से आने दो। पृथ्वी सूक्त में समन्वय और पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य के लाभ की बात कही गयी है।

भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र इन श्लोकों से पता चलता हैं ''वसुधैव कुटुम्बकम्''[6] अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्मांड परिवार सदृश है। ''यत्र विश्वं भवत्येकनीड्म-सम्पूर्ण विश्व एक घोसला है।

उपर्युक्त उदाहरण इस बात का द्योतक है कि भारतीय संस्कृति मानवाधिकार से ओत प्रोत है। व्यक्ति और समाज के मध्य अन्योन्याश्रय का सम्बन्ध है। आदिकाल से ही मनुष्य को सृष्टि में बने रहने के लिये अधिकार की आवश्यकता महसूस हुयी। मनुष्य के भीतर ईश्वर प्रदत्त अलौकिक शक्तियाँ होती है। अपने अन्दर छिपी इन प्रतिभाओं को उभारने के लिए स्वस्थ वातावरण का होना अपेक्षित है। इन सब जरूरतों की दृष्टि से भारतीय दर्शन अपने आप में विशिष्ठतापूर्ण है। विश्व की प्राचीन धरोहर के रूप में वेद भारतीय संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है। भारतीय धर्मग्रन्थों में इस बात की अपेक्षा की गयी है कि ''सत्यम् वद'' अर्थात् सत्य बोलो। धर्मंचर अर्थात् धर्म का आचरण करो। मुंडकोपनिषद् में उल्लिखित है : ''सत्यमेव जयते''[7] अर्थात् सत्य की विजय होती है। जिस संस्कृति में ऐसे भाव विद्यमान हो तो इससे सहज ही समझा जा सकता है कि वह मानवाधिकार के प्रति कितना संवेदनशील होगी। हमारी संस्कृति में जन्म से ही मानवाधिकार सम्बन्धी शिक्षा देने की व्यवस्था है। बच्चे का शिक्षण समाज से ही होता है। संस्कृति एक ऐसी विद्या है जो बच्चों में समाजीकरण द्वारा आती है।

महाभारतकार महर्षि व्यास ने धर्म का सर्वस्व सार्वभौम सत्य बतलाते हुये कहा है कि इस धर्म के सर्वस्व सम्पूर्ण स्वरूप, को सुनो और केवल सुनो ही नहीं अपितु उसको सुनकर अवधारण अपने मन में स्थापित करो कि अपने प्रतिकूल अर्थात् जो तुमको प्रतिकूल अहितकर लगे वह अन्य के लिए अपने आचरण कार्य से मत करो। मानवाधिकार की यह अवधारणा अभूतपूर्व है। इसमें प्राणिमात्र के हित का सन्देश है तथा सम्पूर्ण प्राणिमात्र का हित (कल्याण) करनेवाला ही धर्म है। यह विश्वधर्म की उदार परिभाषा है।

प्राचीन ग्रन्थ मनुस्मृति में मानवाधिकार शब्द का यद्यपि प्रयोग नहीं किया गया हैं किन्तु मनु तथा अन्य प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण, मानवीय मूल्यों की गहन समझ एवं समस्त प्राणियों के कल्याण की भावना द्वारा मानवीय अधिकारों के प्रति अपनी आत्मिक संवेदना को प्रदर्शित किया है। प्राणिमात्र के प्रति दया एवं सहिष्णुता का भाव तथा सर्वमंगल की भावना से अपने कर्तव्यों का अनुपालन आदि ऐसे बिन्दु है जिनसे सहज ही मानवाधिकार का अत्यन्त व्यापक पहलू अपने उदात्त आयामों के साथ उद्घाटित होता है। मनु ने राजाओं को स्पष्ट निर्देश दिया हैं कि यदि वे अच्छाई एवं बुराई को जाने बिना अपनी प्रजा को कष्ट देते है तो तत्काल भ्रष्ट होकर कुल सहित वे विनष्ट हो जायेंगे।

भारतीय संस्कृति शुरू से ही आदर्शों से परिपूर्ण रही है। यहाँ पर समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना की जाती रही है। यहाँ पर महिलाओं एवं पुरूषों को शुरू से ही समान दृष्टि से देखा जाता रहा है। महिलाओं को भोग्य नहीं अपितु अर्धांगिनी के रूप में मान्यता प्रदान की गयी थी। उन्हें प्राचीन भारत में अपने पतियों के साथ यज्ञ में भाग लेने दिया जाता था। प्राचीन भारतीय संस्कृति में समस्त जीवों के अधिकारों की पूजा की जाती रही है। महिलाओं को देवी स्वरूप माना जाता रहा है। गीता के दर्शन के अनुसार कर्तव्यों के निर्वहन में अधिकारों की उत्पत्ति सन्निहित है। भारतीय संस्कृति में अच्छे कार्य के लिये स्वर्ग तथा बुरे कार्य के लिए नरक भोग का प्रावधान वर्णित गीता में कहा गया है कि ''नरक के तीन द्वार हैं जो मनुष्य का विनाश करते हैं : काम, क्रोध, और लोभ। इसलिये मनुष्य को इन मार्गों का त्याग करना चाहिए। यदि मनुष्य इन तीनों द्वारों को बन्द कर दें तो उसे असली स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी।''[9]

भारतीय वांगमय ऐसे कुशल राजाओं, ऋषियों, महर्षियों एवं उदाहरणों से परिपूर्ण है जिसमें उन्होंने मानवता की सेवा व प्राणिमात्र के कल्याण हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। राजा शिवी द्वारा एक जंगली कबूतर को बचाने के लिये अपने शरीर का माँस काट कर अर्पित कर देना, महर्षि दधीचि द्वारा मानव मात्र के कल्याण हेतु अपने अस्थि तक का दान दे देना, स्वप्न में देखी गयी बात पर राजा हरिशचन्द्र द्वारा अपना राजपाट व सर्वस्व दान कर देना आदि ऐसे उदाहरण है जो अपने आप में मानवाधिकार संरक्षण का भाव छुपाये बैठे है। मानवाधिकार सम्बन्धी भारतीय धर्म या दर्शन का चिन्तन इस

श्लोक में सहज ही दर्शनीय है। अयं निजः परो वेऽति गणना लघु चेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[10]; अर्थात् यह मेरा है वह तेरा है यह छोटे विचार वाले लोगों की विशेषता है। बड़े हृदय वाले व्यक्तियों के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी परिवार सदृश है।

उत्तर वैदिक काल में भारतीय संस्कृति को मानवतावादी एवं मानवाधिकार से ओत-प्रोत करने के लिये छठी शताब्दी ईसापूर्व में भारतीय समाज में दो सम्प्रदायों जैन एवं बौद्ध की उत्पत्ति हुयी। इन्होंने सामाजिक सुधार पर बल दिया तथा समाज में अहिंसा को सबसे ऊँचा स्थान प्रदान किया।

इस प्रकार प्राचीन भारत में मानवाधिकार सम्बन्धी श्रेष्ठ विचार एवं सिद्धान्त पाया जाता था जो भारतीय संस्कृति का मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता का प्रमाण है। ये मानवाधिकार सम्बन्धी विचार एवं सिद्धान्त भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक भारतीय समाजिक व्यवस्था के प्रमुख तत्व के रूप में आज भी विद्यमान है और सम्पूर्ण विश्व को मानव गरिमा, मानव मूल्य एवं प्रकृति के संरक्षण का पाठ पढ़ा रहे हैं।

Reference

[1]Jawaharlal Nehru, *The Descovery of India*, 2nd ed. New Delhi Jawaharlal Nehru Memorial Fund 1992

[2]*वृहदारण्यक उपनिषद्* -1.4, 14

[3]*ऋग्वेद* 5/60/5

[4]*ऋग्वेद* 1/89/1

[5]*सुभाषितरत्नभांडागार,* उदार प्रशंसा 2/9

[6]*मुण्डकोपनिषद्* 3.1.6

[7]*गीता* 16/22

[8]*सुभाषितरत्नभांडागार,* उदार प्रशंसा 2/9

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,43-48
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 दिसम्बर 2015

भारत में संसदीय लोकतंत्र : समय की कसौटी पर

ज्योति दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में संसदीय लोकतंत्र : समय की कसौटी पर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज्योति दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

लोकतंत्र राजनीतिक परिस्थिति ही नहीं है या सामाजिक परिस्थिति मात्र नहीं; वह शासन और जीवन की लोकजयी नैतिक धारणा भी है। सभी मनुष्यों का लोकतंत्र में बराबर महत्व होता है, सभी मनुष्यों के अधिकार भी समान होते हैं। समाज की ईकाई के रूप में व्यक्ति लोकतंत्र का मूल आधार है। लोकतंत्र केवल शासन चलाने की एक पद्धति भी है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व लोकतंत्र के आदर्श हैं। लोकतंत्र के द्वारा व्यक्ति और शासन के बीच में प्रभावशाली सम्बन्ध सूत्र स्थापित होता है।

लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने का अवसर यथास्थान मिलता है। लोकतंत्र में मर्यादित एवं अनुशासित शासन की स्थापना होती है। लोकतंत्र केवल बहुमत पक्ष के आचरण मात्र से आरक्षित नहीं होता अपितु लोकतंत्र की रक्षा का भार विरोधी पक्ष पर भी कम नहीं होता। लोकतंत्र हिंसा और क्रांति को रोकता है। लोकतंत्र में प्रतिभा के लिए द्वार बन्द नहीं होता। लोकतंत्र में शासन की व्यवस्था में परिवर्तन केवल जनता के मत द्वारा ही सम्भव होता है, किसी अन्य तरीके से नहीं, यही कारण है कि हिंसा के लिए लोकतंत्र में गुंजाइश नहीं होती।

भारतीय संविधान संसदीय ढाँचे के लोकतंत्र की स्थापना करता है। सच्चा लोकतंत्र संसदीय लोकतंत्र ही हो सकता है जिसमें बिना हिंसात्मक क्रांति के सरकार को बदला जा सकता है। भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहा गया है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर और 'एक व्यक्ति, एक मत' के सिद्धान्त के अनुसार भारत में लोकतंत्र की स्थापना करना भारतीय संविधान निर्माताओं का अत्यंत दूरदर्शी निर्णय था। यह भारतीय जनता के प्रति विश्वास एवं सम्मान का प्रतीक था। प्रत्येक दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी निर्णय था क्योंकि वयस्क मताधिकार द्वारा जाति, लिंग और आर्थिक तथा शिक्षा सम्बन्धी किसी भेदभाव के बिना प्रत्येक भारतीय नागरिक लोकतंत्र में साझीदार हो गया।

सन् 1952 में वयस्क मताधिकार के आधार पर देश में पहले आम चुनाव हुए थे। उस समय मतदाताओं की संख्या 17 करोड़ 30 लाख से कुछ अधिक थी। यही संख्या आज बढ़कर लगीाग 81 करोड़ 45 लाख तक पहुँच गयी है। 1952, 1957,

* शोध छात्रा, राजनीतिविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

1962, 1967, 1971, 1977, 1980, 1984, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009 और वर्तमान में 2014 में लोकसभा के लिए आयोजित 16 उत्तरोत्तर चुनाव भारतीय संसदीय लोकतंत्र के लिए अविस्मरणीय है।

उचित होगा कि संसद के गत 65 वर्षों के कार्यकरण पर विहंगम दृष्टि डाली जाये और उसकी उपलब्धियों तथा सफलताओं-विफलताओं का लेखा-जोखा तैयार करने का प्रयास किया जाये। भारत की संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था अपने-आप में ही विशिष्ट उदाहरण है।

भारत की पहली संसद 26 जनवरी, 1950 को जब संविधान लागू हुआ और हमारे लोकतंत्रात्मक गणराज्य का जन्म हुआ। यह एक अस्थायी संसद थी। संविधान के अन्तर्गत विधिवत् प्रथम निर्वाचन 1951-52 में हुए। द्विसदनीय संसद बनी। दो सदन थे लोकसभा और राज्यसभा। प्रथम लोकसभा का गठन हुआ 17 अप्रैल, 1952 को और उसकी पहली बैठक हुई 13 मई, 1952 को। प्रथम लोकसभा में कांग्रेस को 364 अर्थात् 70 प्रतिशत से अधिक स्थान मिले थे। उसके अतिरिक्त और कोई भी दल इस स्थिति में नहीं था कि उसे संसदीय दल के रूप में या विपक्ष के रूप में मान्यता दी जा सकती। हालांकि प्रथम लोकसभा सार्वभौम अधिकार से चुनी गयी थी, उसके अधिसंख्य सदस्य व्यावसायिक समूह और वकीलों-बैरिस्टरों का था। शिक्षा के नाम पर 37 प्रतिशत स्नातक थे और 23.2 प्रतिशत दसवीं तक भी नहीं पढ़े थे। सदस्यों की औसत आयु 45 वर्ष 8 माह थी। महिलाओं की संख्या केवल 4.4 प्रतिशत थी। विपक्ष संख्या में कमजोर और छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा रहा किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि विपक्ष प्रभावी नहीं रहा अथवा उसकी भूमिका सशक्त नहीं रही। विपक्ष द्वारा लिये गये विरोध और प्रहारों के कारण ही 1956 में टी.टी. कृष्णामचारी को मंत्री पद छोड़ना पड़ा।

दूसरी लोकसभा में भी कांग्रेस की भारी प्रधानता रही और कोई भी दल मान्यता प्राप्त विपक्ष न बन सका। कांग्रेस को 371 स्थान मिले जो प्रथम लोकसभा में 7 अधिक थे। दूसरी लोकसभा की एक विशेषता रही कि इसमें अनेक सामायिक सुधार अधिनियम पारित हुए। पहली बार लोकसभा और राज्यसभा की एक संयुक्त बैठक 'दहेज विरोधक विधेयक' पर हुई। हालाँकि संख्या की दृष्टि से विपक्ष कमजोर ही रहा, गुणात्मक स्तर पर देखें तो उसके सदस्य बड़ी उच्च कोटि की प्रतिभा वाले थे जिन्होंने संसदीय लोकतंत्र के सतर्क प्रहरी की भूमिका निभाने में कोई कसर न छोड़ी। दूसरी लोकसभा के कार्यकाल की एक प्रमुख घटना थी केरल की निर्वाचित कम्युनिस्ट सरकार की बर्खास्तगी और राष्ट्रपति शासन का राज्य पर थोपा जाना।

लगातार तीसरी बार कांग्रेस की प्रधानता तीसरी लोकसभा में भी कायम रही। उसे 361 स्थान मिले जो 73 प्रतिशत से अधिक थे। महिला सदस्यों की संख्या 34 हो गयी जबकि पहली दो लोकसभाओं में यह केवल 27 ओर 22 थी। इसी काल में श्रीमती गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनी। शिक्षा की दृष्टि से स्नातकों की संख्या में वृद्धि हुई। वकील-बैरिस्टर व्यावसायिक समूह अब पहले स्थान से गिरकर दूसरे स्थान पर आ गये। सबसे बड़े समूह के रूप में अब प्रतिष्ठित हुआ कृषक वर्ग। तीसरी लोकसभा में दोनों तरह के सांसद थे, कुछ अपने भले की शक्ति पर निर्भर और कुछ अपनी कुशाग्र बुद्धि और विद्वत्ता पर।

1962 में चीन का आक्रमण, प्रधानमंत्री नेहरू और फिर प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु, 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध आदि तीसरी लोकसभा के कार्यकाल की प्रमुख घटनाएँ थीं।

चौथी लोकसभा के सदस्यों में 66 प्रतिशत स्नातक या उससे भी अधिक शिक्षित थे। व्यावसायिक समूह की दृष्टि से कृषक वर्ग अब भी प्रमुख बना रहा। वकील-बैरिस्टर अब तीसरे स्थान पर पहुँच गये और दूसरे नम्बर पर आये राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ता। संसदीय कार्यवाही में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता और शोरगुल की नई बढ़ती संस्कृति के प्रति लोक-सभा में चिंता प्रकट की गयी। संविधान में तीन संशोधन और किये गये। राजाओं-महाराजाओं की पेंशन आदि समाप्त करने से सम्बन्धित विधेयक राज्यसभा में पास न हो सका और लोकसभा को भंग कर ताजा चुनाव कराये गये।

राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव आया तो प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने कांग्रेस के अपने मनोनीत प्रत्याशी संजीव रेड्डी के विरूद्ध काम किया, स्वतंत्र प्रतयाशी वी.वी. गिरि का समर्थन किया। गिरि जीत गये। चौथी लोकसभा के नवें सेशन (नवम्बर-दिसम्बर 1969) के बीच विशालकाय कांग्रेस दल का विभाजन हो गया। कांग्रेस संसदीय दल के 62 सदस्य दल छोड़कर बाहर चले गये और उन्होंने कांग्रेस (ओ) नाम से पिक्ष में बैठना तय किया। सरकार का पूर्ण बहुमत समाप्त हो गया। सत्ताधारी कांग्रेस अल्पमत में आ गयी और कांग्रेस (ओ) अथवा कांग्रेस (संगठन) 55 सदस्यों के साथ एक नयी संसदीय पार्टी और संसदीय इतिहास में पहली बार मान्यता प्राप्त विपक्ष बन गयी। डॉ. राम सुभग सिंह को संसदीय दल का नेता होने के नाते विपक्ष का नेता भी माना गया।

पाँचवीं लोकसभा में इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस एक बार फिर भारी बहुमत के साथ लौटी। प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस (ओ) को लज्जाजनक हार का मुँह देखना पड़ा। क्षेत्रीय दलों की भी काफी हानि हुई। महिला सदस्यों की संख्या में भी पुनः भारी कमी आयी। केवल 22 महिला सदस्य चुनकर आ पायी।

पाँचवीं लोकसभा कई प्रकार से बहुत महत्वपूर्ण रही। ऐसी कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ हुईं जिनको लेकर संसद में गम्भीर वाद-विवाद हुआ। भारत-सोवियत समझौता, सिक्किम का भारत में विलय, भारत-पाक युद्ध और बांग्लादेश की आजादी, शिमला समझौता आदि के लिए भी पाँचवीं लोकसभा को याद किया जायेगा। इसके काल में संसद सदस्यों के लिए पेंशन योजना प्रारम्भ हुई तथा 19 संविधान संशोधन और 482 अन्य अधिनियम पारित हुए जो किसी भी लोकसभा के लिए एक रिकार्ड था।

जून 1975 में आन्तरिक आपातकाल की उद्घोषणा की गयी जिसकी संसदीय विपक्ष द्वारा कड़ी आलोचना की गयी किन्तु साम्यवादी नेता श्री इन्द्रजीत गुप्ता ने इसका पूरा समर्थन किया। 14 घंटे की लम्बी बहस के बाद उद्घोषणा सम्बन्धी संकल्प स्वीकृत हो गया। सबसे अधिक आलोचना हुई दो बार एक-एक वर्ष के लिए लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाने की और संविधान में 24वें संशोधन की। पाँचवीं लोकसभा में विपक्ष के कई प्रमुख नेताओं को कारावास भोगना पड़ां संसद की कार्यवाही के समाचार-पत्रों में प्रकाशन पर सेंसर लगाया गया। संसद के भीतर विपक्ष बहुत कमजोर था, शायद इसीलिए वह सड़कों पर उतर आया, देश भर बंद हुई।

1977 में छठी लोकसभा के लिए निर्वाचन में कांग्रेस बुरी तरह पराजित हुई। कांग्रेस का 30 साल का आधिपत्य खत्म हुआ और मोरारजी के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी और कांग्रेस मान्यता प्राप्त विपक्ष बन गया। इन्दिरा गांधी को लोकसभा की सदस्यता से निकाल दिया गया और जेल भी भेजा गया। किन्तु जल्दी ही नेताओं की अपनी-अपनी महत्वाकांक्षाओं के कारण जनता पार्टी में फूट पड़ गयी। विपक्ष कांग्रेस की ओर से 10 जुलाई 1979 को यशवंत राव चव्हाण ने मोरार जी सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव रखा और 15 जुलाई को मोरारजी ने त्यागपत्र दे दिया। कुछ दिन के लिए कांग्रेस की मदद से चरण सिंह की सरकार बनी और फिर ताजा चुनाव कराने पड़े। जनता पार्टी की सरकार (पहली गैर कांग्रेस) सरकार असफल हो गयी।

छठी लोकसभा में सदस्यों की औसत आयु 52.1 वर्ष थी। इसके अनुसार यह लोकसभा अब तक की सबसे अधिक आयु वाली लोकसभा थी। शिक्षा की दृष्टि से यह लोकसभा सबसे अधिक शिक्षित थी। महिलाओं की संख्या अब तक की लोक-सभाओं में सबसे कम थी।

1980 में इन्दिरा गांधी और कांग्रेस एक बार फिर भारी बहुमत से लोकसभा में सत्ता पक्ष के रूप में वापस आए। दो जनता पार्टियाँ और आगे विभाजित होकर चार दलों में बँट गयी और एक बार फिर लोकसभा में कांग्रेस के अतिरिक्त किसी दल को मान्यता प्राप्ति के लिए जरूरी 50 स्थान प्राप्त नहीं थे, किन्तु गुणात्मक दृष्टि से विपक्ष इतना दुर्बल नहीं था।

सातवीं लोकसभा के लगभग पूरे कार्यकाल में विशेषकर सत्ता पक्ष और विपक्ष में पंजाब की स्थिति को लेकर झड़पें होती रही। मण्डल कमीशन की रिपोर्ट जिसमें पिछड़ों के लिए 27 प्रतिशत स्थानों के आरक्षण की सिफारिश की गयी थी, देर रात तक वाद-विवाद का विषय बनी रही।

इन्दिरा गांधी की हत्या की पृष्ठभूमि में हुए आठवें आम चुनावों में कांग्रेस एक बार फिर भारी बहुमत से जीती। 513 में से 402 स्थान उसे मिले। भारतीय जनता पार्टी को केवल 2 स्थान मिले। अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष 1984 में भारत में अब तक का सबसे युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी बने। आठवीं लोकसभा के अधिकांश सदस्य एकदम नये थे। 71 प्रतिशत सदस्य स्नातक या उससे और अधिक शिक्षित थे।

आठवीं लोकसभा के दौरान 13 संविधान संशोधन हुए। इनमें एक के द्वारा दल- बदल पर रोक लगाने का और दूसरे में मतदान की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष करने का प्रावधान किया गया। भारत के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ जब सरकार की सलाह के बावजूद राष्ट्रपति ने डाक विधेयक को अपनी अनुमति नहीं दी और वह कानून न बन सका। समाचार पत्रों की स्वाधीनता पर आघात करने वाला 'डिफेमेशन बिल' का भी कुछ ऐसा ही हाल हुआ।

आठवीं लोकसभा के कार्यकाल में विपक्ष और सत्ता पक्ष के बीच बहुत-सी तीखी झड़पें, गर्मागर्म वाद-विवाद और सदन से बहिर्गमन (वाक आउट) की घटनाएँ हुई किन्तु जिस मामले को उठाने में और लगातार चरम सीमा पर रखने में विपक्ष ने सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावी भूमिका निभायी वह था बोफोर्स दलाली का मामला। कुल मिलाकर इस मामले में 64 घंटे और 16 मिनट की बहस चली। 15 मार्च 1989 को अनुशासनहीनता और पीठासीन अधिकारी की अवज्ञा के लिए 63 विपक्ष के सदस्यों का एक साथ निलम्बिन किया जाना भी एक अभूतपूर्व घटना थी। इतिहास में पहली बार 24 जुलाई, 1989 को, एक ही सत्र में (चौदहवें सत्र) में 107 विपक्ष के सदस्यों ने लोकसभा से त्यागपत्र दिया। 73 त्यागपत्र तो एक ही दिन में दिये गये। आठवीं लोकसभा के कार्यकाल में सदन से त्यागपत्र देने वालों की कुल संख्या 124 तक जा पहुँची, जो अपने में लोकसभा के लिए एक रिकार्ड था।

नवीं लोकसभा के लिये हुये चुनावों में कांग्रेस की भारी हार हुई। सबसे बड़ा दल होते हुए भी कांग्रेस ने सरकार बनाने में पहल करने का कोई प्रयास नहीं किया। राजीव गांधी विपक्ष के नेता के रूप में बैठने वाले पहले पूर्व प्रधानमंत्री थे।

नवीं लोकसभा में 74 प्रतिशत सदस्य स्नातक या स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त थे। पहली बार राष्ट्रपति के अभिभाषणों का दूरदर्शन और आकाशवाणी पर प्रसारित किया गया। यह लोकसभा और राज्य सभा की कार्यवाहियों के सीधे प्रसारित किये जाने की दिशा में पहल थी।

प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह ने अचानक लोकसभा और राज्यसभा में मण्डल कमीशन की आरक्षण सम्बन्धी सिफारिशें लागू किये जाने की घोषणा कर डाली। इसके विरोध में भयंकर आंदोलन फैला जिसमें से अनेक युवकों ने सड़कों पर अपने को जला डाला।

भाजपा द्वारा समर्थन वापस लिये जाने से विश्वनाथ प्रताप सिंह की संयुक्त मोर्चा सरकार लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पर हार गयी और उसे त्यागपत्र देना पड़ा। यह पहला अवसर था, जब लोकसभा में किसी सरकार के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास हुआ और विपक्ष की सरकार को सत्ताच्युत करने का अवसर मिला। कांग्रेस के समर्थन के आश्वासन से चन्द्रशेखर नये प्रधानमंत्री बनाये गये किन्तु कांग्रेस के समर्थन वापस लिये जाने पर उन्हें भी त्याग पत्र देना पड़ा और सदन भंग की गयी।

लोकसभा के दसवें आम चुनाव अब तक के सब चुनावों से अधिक हिंसा प्रधान रहे। कांग्रेस अध्यक्ष और पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की निर्वाचन काल के बीच हत्या कर दी गयी। निर्वाचन के परिणाम आये तो पता चला कि किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला था किन्तु कांग्रेस सबसे बड़े संसदीय दल के रूप में उभरी थी। कांग्रेस ने राव के नेतृत्व में अपनी सरकार बनायी। गैर-भाजपावाद का बोलबाला शुरू हुआ। मान्यता प्राप्त विपक्ष दल भाजपा बनी। लालकृष्ण आडवाणी नेता प्रतिपक्ष बने। बाद में यह दायित्व अटल बिहारी वाजपेयी ने संभाला। नरसिंह राव के मंत्रिमण्डल के विरूद्ध बार-बार अविश्वास प्रस्ताव आये किन्तु हर बार नरसिंह राव मंत्रिमण्डल अधिक सक्षम होकर सामने आया और विपक्ष कमजोर होता चला गया। संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में दसवीं लोकसभा अनेक आर्थिक घोटालों के लिये, राजनीति के अभूतपूर्व अपराधीकरण के लिये तथा जातिवाद और साम्प्रदायिकता के कुत्सित प्रभाव के लिये सबसे अधिक जारी जायेगी।

ग्यारहवीं लोकसभा में 28 राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व मिला किन्तु किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने के कारण सरकार की अस्थिरता का दौर शुरू हुआ। तीन सरकारें और तीन प्रधानमंत्री आये-गये। पहले अटल बिहारी वाजपेयी और फिर देवगौड़ा तथा गुजराल। चार विश्वास प्रस्ताव आये। वाजपेयी सरकार को 13 दिन बाद ही त्यागपत्र देना पड़ा। एक विशेषता यह रही कि दो प्रधानमंत्री देवगौड़ा और गुजराल राज्यसभा के सदस्य थे। अन्त में केवल 12 महीने के भीतर ही सदन का विघटन और ताजा चुनाव अनिवार्य हो गये।

12वीं लोकसभा में भी किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। भाजपा के नेतृत्व में अटल बिहारी वाजपेयी ने मिली-जुली सरकार बनायी, जो लगभग 13 माह ही चल सकी। यह सदन अब तक का सबसे कम आयु का सदन रहा और एक बार फिर आम चुनाव कराने पड़े। सदन की कार्यवाही में व्यवधान, हल्लाबाजी, अव्यवस्था और बारम्बार स्थगन का सिलसिला चलता रहा। 10 प्रतिशत समय सदन का इसी में बीता।

13वीं लोकसभा के प्रारम्भ में बालयोगी को पुनः अध्यक्ष चुना गया, किन्तु दुर्भाग्यवश वह दुर्घटनाग्रस्त हुए और कार्यकाल पूरा न कर सके। अटल बिहारी वाजपेयी ने 23-24 दलों के साथ मिलकर मिली-जुली सरकार बनायी, जो अनेक उतार-चढ़ावों

के बावजूद चलती रही। पहले आतंकवाद विरोधी विधेयक को लेकर और फिर गुजरात के मसले को लेकर कठोर शांति परीक्षण हुए और परिणाम सरकार के पक्ष में रहे। 13 दिसम्बर, 2001 का भारतीय संसद पर आतंकवादी हमला हुआ जो देश की सुरक्षा व्यवस्था पर सवाल खड़े करता था। आतंकवाद विरोधी विधेयक (पोटा) को लेकर इस लोकसभा में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलानी पड़ी। संसद के इतिहास में यह तीसरा ही अवसर था।

2003 में 5 राज्यों- मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मिजोरम और दिल्ली में चुनाव हुए जिनमें पहले तीन राज्यों में भाजपा को निर्णायक विजय प्राप्त हुई। इससे उत्साहित होकर भाजपा ने 'फील गुड फैक्टर' तथा 'इण्डिया साइनिंग' का नारा लगाया और 6 फरवरी को लोकसभा भंग कर दी गयी तथा नये निर्वाचनों का पथ प्रशस्त हो गया।

भाजपा के नेतृत्व वाली राजग सरकार ने 2004 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की देखरेख में अपने शासन के पांच साल पूरे किये और 20 अप्रैल से 10 मई, 2004 के बीच चार चरणों में चुनाव हुये। अधिकांश विश्लेषकों का मानना था कि भाजपा पुनः सरकार बनायेगी, परन्तु सारे समीकरण फेल हो गये और 14वीं लोकसभा चुनावों में इतिहास में यह पहली बार था जिसमें पूरा मतदान इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीनों से हुआ।

1980 के दश के अन्य सभी लोकसभा चुनावों की तुलना में इन चुनावों में, दो व्यक्तित्वों का टकराव (वाजपेयी और सोनिया गांधी) अधिक देखा गया, क्योंकि वहाँ कोई तीसरा व्यवहार्य विकल्प मौजूद नहीं था। 13 मई को भाजपा ने हार को स्वीकार किया और कांग्रेस अपने सहयोगियों की मदद और सोनिया गांधी के मार्गदर्शन में 543 में से 335 सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने में सफल रही। चुनाव के बाद हुए इस गठबंधन को संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन कहा गया। सोनिया गांधी ने प्रधानमंत्री बनने से इंकार कर लगभग सभी को हैरान कर दिया। इसके बजाय पूर्व वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह से यह दायित्व उठाने को कहा गया।

दिसम्बर, 2005 में सवाल पूछने के बदले घूस मांगते 'आपरेशन दुर्योधन' के तहत कैमरे की गिरफ्त में आये सभी 11 सांसदों को सदन से निष्कासित किया गया। देश के इतिहास में यह पहला मौका है जब इतने बड़े स्तर पर सांसदों के खिलाफ संसद में ऐसा सख्त कदम उठाया। इसके अलावा 14वीं लोकसभा इस बात के लिये भी याद रखी जायेगी कि इन पाँच सालों में सत्ता पक्ष और विपक्ष में ज्यादातर मुद्दों पर भी रहती थी। इसी बीच लगभग 60 सीटों वाली तीसरे सबसे ताकतवर वाम मोर्चे ने सप्रंग सरकार को बाहर से समर्थन देकर सत्ताधारी और विपक्ष दोनों की भूमिका का भरपूर आनंद उठाया। लेकिन अमेरिका से परमाणु समझौते के विरोध में जब समर्थन वापस लेकर सरकार को गिरने का खतरा पैदा कर दिया तो उसी की करीबी सपा ने एक बार फिर सरकार के समर्थन में आकर ऐसा होने से बचा लिया।

मई, 2009 में, 15वीं लोकसभा के चुनाव के परिणामों की घोषणा की गयी। पुनः कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) की सरकार बनी। 543 में से 307 लोकसभा सदस्य पहली बार चुन कर आये थे, उम्मीद थी कि ये लोग बेहतर करेंगे, ऐसा हुआ नहीं।

2009 में जब 15वीं लोकसभा आई थी, सरकार ने आते ही शिक्षा का अधिकार कानून पास करा दिया था। फिर बात आई महिलाओं के आरक्षण बिल की जिसे 2010 में राज्यसभा में पास करा दिया गया। 2010 के शीतकालीन सत्र से संसद के कामकाज में कुछ कमी आनी शुरू हो गयी। व्यवधान ज्यादा होने लगे, राजनीति ज्यादा शुरू हो गयी जिससे काम कम होने लगे। इस वजह से 2010 का शीतकालीन सत्र पूरी तरह से बर्बाद हो गया। दोबारा काम की प्रक्रिया बढ़ी 2013 में जब खाद्य सुरक्षा विधेयक, भूमि अधिग्रहण बिल और दिसम्बर आते-आते लोकपाल विधेयक भी पास हो गया।

लोकसभा के सीधे प्रसारण को रोककर तेलंगाना विधेयक को पारित किया गया। इस फैसले को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी अपने विदाई भाषण में काफी मुश्किल भरा बताया। 15वीं लोकसभा की कार्यवाही भारतीय संसद के इतिहास में सबसे बाधित रही। इसके अंतिम सत्र में मिर्च स्प्रे की घटना भी हुई जिससे संसदीय आचरण में नयी गिरावट देखने को मिली। लोकसभा का लगभग एक सत्र 2जी स्पेक्ट्रम घोटाले तथा कोल गेट के मुद्दे पर साफ हो गया।

भारत में 16वीं लोकसभा के लिये आम चुनाव 7 अप्रैल से 12 मई,, 2014 तक 9 चरणों में सम्पन्न हुए। ऐसा पहली बार हुआ, जब देश में 9 चरणों में लोकसभा चुनाव हुए। औसत मतदान 66.38 प्रतिशत के आसपास रहा जो भारतीय आम चुनाव के इतिहास में सबसे उच्चतम है। 336 सीटों के साथ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सबसे बड़ा दल और 282 सीटों के

साथ भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन ने 59 सीटों पर और कांग्रेस ने 44 सीटों पर जीत हासिल की। अपने संख्या बल की कमी के आधार पर कोई भी दल विपक्षी दल की मान्यता को हासिल नहीं कर पाया।

जहाँ तक 16वीं लोकसभा की बात की जाये तो इसके गठन को मात्र 18 महीने मात्र हुए हैं। 1984 के बाद भाजपा ऐसी पहली राजनीतिक दल बनी, जिसने बहुमत की सरकार के साथ गठबंधन की सरकार का गठन किया। लेकिन संसदीय व्यवहार में यह बहुमत की सरकार के कामकाज को देखना अभी शेष है। प्रारम्भिक लक्षणों से स्पष्ट है कि विपक्ष संख्या बल में कम होते हुए भी बहुमत के आगे झुकने को तैयार नहीं दिखाई पड़ रहा।

निष्कर्ष

पिछले दशकों पर विहंगम दृष्टि डालें तो देखते हैं कि पहली लोकसभा के काल में 16वीं लोकसभा तक आते-आते संसदीय संस्थाओं के कार्यकरण, स्वरूप और आयामों में भारी फेर-बदल हुआ। नये चेहरे और नयी पहचान सामने आयी।

संसदीय लोकतंत्र एक सभ्य और सुसंस्कृत शासन प्रणाली है। उसकी अपनी एक संस्कृति है जो निर्णय करती है कि क्या कृत्य संसदीय और क्या असंसदीय हैं। संसदीय लोकतंत्र के लिए एक सैद्धान्तिक द्विदलीय व्यवस्था नितान्त आवश्यक है, किन्तु भारत में एक स्वस्थ द्विदलीय राजनीतिक व्यवस्था अभी तक नहीं उभर सकी है।

दल-बदल निरोधक कानून के कारण भी संभवतः सदस्यों के चरित्र, कार्यकरण और दृष्टिकोण में बदलाव आया। कानून मूलतः निरर्थक सिद्ध हुआ क्योंकि अब दल-बदल केवल व्यक्तियों का न होकर समूहों में होने लगा। संतोष का विषय है कि 13वीं लोकसभा में दल-बदल कानून को कठोर बना दिया गया है।

पहले क्षेत्रीय और स्थानीय समस्याओं को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाता था तो अब राष्ट्रीय समस्याओं को भी क्षेत्रीय, जातिगत, भाषाई, साम्प्रदायिक तथा अन्य ऐसे ही संकुचित आधारों पर जाँचा-परखा जाता है।

जिसे त्रिशंकु लोकसभा की संज्ञा दी जाने लगी है उसने संसदीय संस्कृति और देश की राजनीति को और संकुचित बना दिया है।

स्वाधीनता और संसद दोनों ही अत्यन्त कोमल पौधे हैं। यदि इन्हें ध्यानपूर्वक सींचा-संजोया न जाये तो ये शीघ्र ही मुरझा जाते हैं। यदि हमें संसद और संसदीय लोकतंत्र को मजबूत बनाना है तो सबसे पहले ऐसा कुछ करना होगा जिससे संसद और सांसदों की पारस्परिक गरिमा पुनर्स्थापित हो और फिर से उन्हें जनमत में आदर और स्नेह का स्थान मिल सके।

सन्दर्भ सूची

सईद, एस.एम.(2011) -*भारतीय राजनीतिक व्यवस्था,* भारत बुक सेंटर, लखनऊ
जौहरी, जे.सी.(1974 -*इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स,* विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली
गुप्त, डी.सी. -*इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स,* विशाल पलिशिंग हाउस, दिल्ली
कश्यप, सुभा-ा सी.(1969) -*पॉलिटिक्स ऑफ डिफेक्शन,* नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली
ग्रोवर, बी.एल.(1997) -*आधुनिक भारत का इतिहास (1907 ई. से वर्तमान समय तक),* एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली
नारायण, विनीत (1999) -*हवाला के देशद्रोही,* अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली
जैन, धर्मचन्द्र (2001) -*भारतीय लोकतन्त्र,* प्रिंटवेल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर
रंजन, राजीव (2003) -*चुनाव, लोकसभा और राजनीति,* ज्ञानगंगा, दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,49-53
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 दिसम्बर 2015

भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों व समस्याओं को देखने का मार्क्सवादी आईना और उसका समाधान : एक तुलनात्मक अन्तर्दृष्टि

सुबोध प्रसाद रजक*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों व समस्याओं को देखने का मार्क्सवादी आईना और उसका समाधान : एक तुलनात्मक अन्तर्दृष्टि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सुबोध प्रसाद रजक* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

"The British had planned to construct an ideological citadel of Islam in the territory stretching from Turkey to china as a buffer against the surge of communist ideology so that this world act as a ring around soviet Russia. In order to achieve this objective, it mattered little to the British if India was partitioned. Muslims divided or there was bloodshed among Hindus, Muslims and Sikhs. The British were neither foes of the hindus, nor friends of the Muslims. They set up Pakistan not as a gesture of friendship towards the Muslims, but under the compulsion of their international policies." Wali Khan

भूमिका

किसी भी समस्या के समाधान की शुरूआत समस्या को सच्चे रूप में एवं उस समस्या में अन्तर्निहित अन्य समस्याओं को समझने से शुरू होती है। किसी राष्ट्र की विदेश नीति एवं पर-राष्ट्र संबंध, राष्ट्रहित वैश्विक बाध्यताओं, शक्ति संतुलन एवं आन्तरिक बाध्यताओं से निर्देशित, नियंत्रित एवं संचालित होती है। इन्हीं आधारभूत तथ्यों के आधार पर जब हम दो पड़ोसी मुल्कों भारत-पाकिस्तान (जिसकी कभी साझी संस्कृति, इतिहास एवं स्वतंत्रता संघर्ष रही है। *15 अगस्त 1947* के बाद से इन दो मुल्कों में केवल विवाद, वैमनस्य एवं कटुता ही नजर आती है। रही-सही कसर साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी नीति वाले राष्ट्रों की दोहरी नीति एवं आतंकवाद पूरी कर देती है।) के संबंधों एवं समस्याओं को समझने का प्रयास करते हैं, तो पाते हैं कि जहाँ एक तरफ *महामना, महात्मा गांधी* के अखण्ड भारत बने रहने की मनोकामना और इस हेतु उनका चिन्तन नजर आता है, तो दूसरी तरफ *मार्क्स* के आधार-अधिरचना सिद्धांत, विचारधारा एक मिथ्या चेतना, *एंटोनियो ग्राम्शी* का प्राधान्य

* शोध छात्र, राजनीतिविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

संबंधी अवधारणा एवं वैधता व सहमति हेतु नागरिक समाज की संस्थाओं एवं राजनीतिक समाज की संस्थाओं की महत्ता संबंधी विचार, नव मार्क्सवादियों का समूह *(फ्रेंकफर्ट स्कूल)* के सदस्यों की आलोचनात्मक पद्धति, मार्क्सवाद से प्रेरित *अस्तित्व-वादियों* एवं *उत्तर-आधुनिकतावादियों* द्वारा सार्वभौमिक सत्य एवं सिद्धांतों को चुनौती दिया जाना एवं व्यक्ति के स्वतंत्रता की अनंत सम्भावनाओं की वकालत करना आदि बाते हमें विस्तृत वैचारिक भूमि प्रदान करती है। आजादी के आरंभिक वर्षों में भारत की सामंती आर्थिक संरचना, जातीय-वर्गीय सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना और उससे नियंत्रित, निर्देशित राजनीतिक व शैक्षणिक संरचना एवं भावनाओं व संवेदनाओं से संचालित राजनीतिक नेतृत्व पर खड़ा प्रक्रियात्मक लोकतंत्र और बहुलमत प्रणाली वाली चुनावी प्रक्रिया आदि बातें हमें मार्क्सवादियों के आधार-अधिरचना, विचारधारा : एक मिथ्या चेतना एवं प्राधान्य सिद्धांतों की सार्थकता से हमें परिचित कराती हैं। धर्म के संकीर्ण अर्थ, धार्मिक साम्प्रदायिकता के आधार पर जन्मी पाकिस्तान में व्याप्त सत्ता के कई केन्द्र- *आई.एस.आई, सेना, धार्मिक नेतृत्व, राजनीतिक नेतृत्व, मजहबी आतंकवाद (बैड तालिबान, गुड तालिबान, अलकायदा, लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद* आदि का प्रभाव, भूमि सुधार एवं वितरण की कमी, सामंती आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना, पूंजीवादी का पैरोकार, वैश्वीकरण का मास्टर माइंड अमेरीका व पश्चिमी देशों की दोहरी नीति एवं दखलंदाजी, मजहबी राजनीति आदि बातें पाकिस्तान के आंतरिक व बाह्य वास्तविकता को अत्यंत दुरूह व जटिल बना देती है। यहाँ भी मार्क्सवाद की संकल्पना आधार-अधिरचना, पूंजीवाद की शोषणकारी नीति, विचारधारा एक मिथ्या चेतना, धर्म अफीम है आदि बातें अर्थपूर्ण हो जाती हैं। आम जनता को उसके वास्तविक पहचान से गुमराह किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में अल्प विकास, निर्भरता एवं केन्द्र-परिधि सिद्धांत के आलोक में भी विदेश नीति एवं पर-राष्ट्रों के संबंधों को समझा जा सकता है।

भारत-पाकिस्तान संबंधों की संवेदनशीलता

भारत-पाकिस्तान के बीच जब कोई मैच होता है तो पाकिस्तानी आवाम के द्वारा खिलाड़ियों पर यह दबाव डाला जाता है कि चाहे तो हर मैच हार जाओ लेकिन भारत के साथ मैच जरूर जीतो और कमोवेश यही बात भारत के साथ भी लागू होती है। अपनी आजादी के लिए साथ-साथ कदम बढ़ाने वाले यह दो देश एक-दूसरे से कैसे इतनी दूर चले गए। क्या कारण है कि पाकिस्तान की जनता परेशान है लेकिन वहाँ शक्ति के विभिन्न संस्थाएँ सशक्त एवं सम्पन्न है। *ISI, सेना, राजनीतिक नेतृत्व* एवं *धार्मिक नेतृत्व।* जनता के तमाम समस्याओं का समाधान न खोजकर उन्हें उनके समस्याओं से गुमराह किया जाता है। उनके गरीबी, शोषण, वंचना, भेदभाव की बातों को पीछे रखते हुए उस पर मजहब का लिवास पहनाकर 10 साल के बच्चे को भी ज़िहादी बनाया जाता है, उसे भारत के खिलाफ भड़काया जाता है। उसे उसके वास्तविक चेतना से परे हटाकर मज़हबी चेतना को प्रोत्साहित किया जाता है। आम जनता, गरीब जनता, सर्वहारा वर्ग को उनकी वास्तविक समस्याओं से बेखबर रखते हुए, उनमें मजहबी उन्माद फैलाया जाता है। मजहब के नाम पर लड़ाया जाता है। मज़हब को जिन्दा रखने के लिए मनुष्यों को मारा जाता है। अब बड़ा सवाल यह है कि मजहब मनुष्य के लिए या फिर मनुष्य मज़हब के लिए? एक मानव का सबसे बड़ा परिचय यह है कि वह मानव है वह किस मजहब का है धर्म का है यह बात बहुत बाद में आती है। पाकिस्तान जब से पैदा हुआ है तब से मज़हब, धर्म की राजनीति कर रहा है और मजहब की इस राजनीति का ही परिणाम है कि वह मनुष्यों की समस्याओं का समाधान करने के बजाय उनके लिए नए-नए समस्याओं को आमंत्रित कर रहा है। *गुड तालिबान, बैड तालिबान, ISI, लश्कर-ए-तौयबा, अलकायदा* को पाकिस्तान में पनाह मिलना क्या संकेत करता है। *दास प्रथा के युग में दास पूंजी थी, सामंती व्यवस्था में भूमि, पूंजीवादी व्यवस्था में पैसा पूंजी है लेकिन मजहबी राजनीति एवं आतंकवाद के इस दौर में धर्म बहुत बड़ी पूंजी बनती जा रही है।* इस पर हमें विचार करना होगा।

अब मैं भारत पे आता हूँ- 90 के दशक में तीन चीजों ने भारत की आंतरिक एवं वाह्य राजनीति को गहरे रूप से प्रभावित किया है वह है- *मंदिर, मंडल और मार्केट,* मंदिर के मुद्दे ने यहाँ किसी राजनीतिक पार्टी को राजनीतिक लाभ पहुँचाने का काम किया है, वहीं मंडल के मसले ने राजनीतिक पार्टियों को नए *Social Engineering* बनाने की ओर इशारा किया है। लेकिन मार्केट के व्यापक प्रभाव ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था व वैश्विक अर्थव्यवस्था के बीच बने समीकरण को समझने

के लिए *मार्क्स* के *आधार अधिरचना* एवं *ग्राम्शी* के *प्राधान्य (hegemony)* सिद्धांत को नये सिरे से विचार करने के लिए उसे बौद्धिक विमर्श के केन्द्र में ला दिया है। शुरू-शुरू में जहाँ हम कुछ हद तक वैश्विक वित्तीय संस्थाओं के नियंत्रण व निर्देशन में काम करते थे वहीं आज हम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं बाजारवाद से निर्देशित व नियंत्रित हो रहे हैं। बाजारवाद ने जिस उपभोक्तवादी संस्कृति को जन्म दिया है उसमें व्यक्ति न सिर्फ अकेलेपन की पीड़ा बल्कि पराएपन की पीड़ा से भी पीड़ित है। अर्थ की अंधी दौड़, अनंत पाने की अनंत आकांक्षा ने संपोषणीय, सतत् व समावेशी विकास एवं पर्यावरणीय मानकों की भी धज्जियाँ उड़ा दी है। व्यक्ति व्यक्ति न रहकर वस्तु बनता जा रहा है।

बौद्धिक जगत में धर्म बहुत ही पेचीदा विषय है भारतीय सन्दर्भ में जब धर्म को परिभाषित किया जाता है तो यह कहा जाता है कि जो धारण करने योग्य है वही धर्म है। *डॉ0 वेद प्रकाश वर्मा* द्वारा लिखी पुस्तक *'धर्म की मूल समस्याएं'* में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि नैतिकता, नीतिशास्त्र, परोपकारी, सर्वहितकारी सामाजिक मूल्यों की उत्पत्ति धर्म ही मानी जा सकती है। धर्म ही जीवन दर्शन है, जीवन-शैली है तो फिर हम धर्म निरपेक्ष कैसे हो सकते हैं। धर्म के संबंध में जब भी मार्क्स को याद किया जाता है तो उनके द्वारा धर्म के संबंध में की गई नकारात्मक टिप्पणी कि 'धर्म अफीम है' को ही अंतिम मान लिया जाता है।

जे0एन0यू0 के प्रो0 एम0एन0 ठाकुर ने मार्क्सवाद के संबंध में एक व्याख्यान में उन्होंने कहा है कि *Das Capital (1860)* के जिस *Paragraph* के अंतिम पंक्ति में धर्म को अफीम *(Religion is the opium of society)* कहा गया है। उसी Paragraph के ऊपरी दो पंक्तियों में धर्म को जीवन *(Religion is the soul of soulless society, heart of heartless society)* कहा गया है। इसलिए यह बेहद जरूरी है कि उन परिस्थितियों एवं सन्दर्भों को समझने का प्रयास किया जाए कि कब-कब धर्म *अफ़ीम* और *जीवन* बन जाता है। मैं पश्चिम की परिस्थितियों में न जाते हुए सीधे भारत-पाकिस्तान के सन्दर्भ में इस तथ्य को परिभाषित करने की कोशिश कर रहा हूँ कि कब-कब धर्म अफीम और कब-कब धर्म जीवन बन जाता है-

बाबरी मस्जिद विध्वंस के समय हवा में एक नारा उछलता है, मारेंगें या मर जाएंगें मन्दिर वहीं बनाएंगे तो धर्म अफीम बन जाता है।

मजहब के नाम पर एक मासूम सी बच्ची मलाला को जब मौत से मुखातिब कराया जाता है, जब कोई आरिफ़ मजहब के नाम पर बाथरूम साफ करने इराक चला जाता है, जब कोई खाते-पीते घर का मेंहदी मजहब के नाम पर मौत का कारोबार करने वाले साइट में संलिप्त हो जाता है तो धर्म अफीम बन जाता है।

जब मजहब के नाम पर पेशावर में मासूम बच्चों का कत्लेआम किया जाता है, जब जिहाद और जन्नत के नाम पर जिन्दगी को जहन्नूम एवं ईशनिंदा के नाम पर ईन्सानियत का गला घोंटा जाता है तो धर्म अफीम बन जाता है।

जब हमारे साधु-संतों में चरित्र दोष और मदरसों-मस्जिदों में नबालिग बच्चियों के साथ बलात्कार होने लगता है तो धर्म अफीम बन जाता है।

लेकिन जब कोई हिन्दू अपने धर्म-शास्त्रों में वर्णित नर से नारायण बनने की संकल्पना को अपने जीवन में चरित्रार्थ करता है और जब कोई सच्चा मुसलमान कुरान शरीफ के तमाम शुराओं-आयतों को अपने जीवन में उतारते हुए बड़े ही जिन्दादिली से यह कहता है कि मेरे जिन्दगी का मकसद तेरे दीन की सरफ़राजी इसलिए मैं मुस्लमां इसलिए मैं नमाजी तो धर्म जीवन बन जाता है।

जे0एन0यू0 के राजनीति विज्ञान के *प्रोफेसर एम0एन0 ठाकुर* ने अपने व्याख्यान *''आतंकवाद और अहिंसा''* में बड़े ही संजीदगी के साथ इस तथ्य को उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार अमेरिका प्रायोजित पूंजीवादी नीतियों एवं सोवियत संघ को घेरने हेतु नव स्वतंत्र राष्ट्रों को पूंजीवादी खेमे में लाने के उद्देश्य से उनके अर्थ-व्यवस्था, अखंडता एवं सम्प्रभुता पर गैर-जरूरी हस्तक्षेप कर उन्हें अस्थिर एवं आतंक के विस्तार में योगदान दिया है। बाजारवादी पूंजीवादी की शोषणकारी नीतियां, सांस्कृतिक उप-निवेशवाद के नए चलन ने इस्लामिक राष्ट्रों में आर्थिक शोषण की भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक वंचना व धार्मिक अस्मिता के संकट का एहसास कराया है, जिनके कारण उनमें *''अन्याय की अनुभूति (Sense of*

Injustice)" घर कर गयी है। यही *"अन्याय की अनुभूति (Sense of Injustice)"* असंतोष को जन्म देती है जो कभी आन्दोलन तो कभी आतंकवाद के रूप में समाज के सामने प्रकट होता है।

अतीत में पश्चिमी देशों द्वारा किये गये गलतियों की ओर संकेत करते हुए भारतीय राजनीतिज्ञ शशी थरूर ने उचित ही टिप्पणी की थी कि *ब्रिटेन को अपनी औपनिवेशिक लूट के लिये पूर्व के उप-निवेशों से माफी मांगनी चाहिए। ये यूरोपीय देश ही है, जिन्होंने पूर्व के समाजों में अपने खिलाफ होने वाले आन्दोलनों को कमजोर करने के लिए धार्मिक पहचान की राजनीति का विष बोया था, और आज जब उनके परिणाम उनके ही सामने आ रहे हैं तो वे समस्या का समाधान करने के बज़ाय उससे पीछा छुड़ा रहे हैं?*

धर्म के आधार पर भारत-पाकिस्तान का विभाजन के पीछे अंग्रेजों की मंशा न तो मुसलमानों के आकांक्षा को पूरा करना था और न ही हिन्दुओं के हितों का ख्याल करना बल्कि इसके पीछे सबसे बड़ी साजिश पाकिस्तान को एक इस्लामिक राष्ट्र की पहचान एवं उसे मदद देकर एशियाई राष्ट्रों में साम्यवाद के प्रसार को रोकना था और इस प्रकार पूंजीवाद की बलि वेदी पर भारत की अखंडता, सहिष्णुता, सांस्कृतिक सद्भाव एवं हिन्दू-मुस्लिम में वर्षों से चले आ रहे भाई-चारे की भावना कुर्बान हो गई इस तथ्य की पुष्टि प्रसिद्ध इतिहासकार *Wali Khan* के चिंतन व लेखनी में मिलती है।

निष्कर्ष

हम अपने राजनीतिक प्रतिनिधियों को चुनते हैं लेकिन व्यवस्था में पूंजीपतियों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। राजनीति का मुखौटा पहने राजनीतिक नेतृत्व पूंजीपतियों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित में विदेश नीति को अंजाम दे रही है। आवश्यकता इस बात की है कि अब सर्वहारा वर्ग की विदेश नीति को प्रोत्साहित किया जाए। सरहदों के आर-पार *People to People contact* को बढ़ाया जाए, उनमें वास्तविक चेतना एवं वर्ग चेतना विकसित किया जाए और यह मुश्किल नहीं है हमें वैकल्पिक बौद्धिक विमर्श एवं वैकल्पिक राजनीति के द्वारा संभव बनाया जा सकता है।

भारत और पाकिस्तान के विवाद का मुख्य विषय कश्मीर समस्या है। *1948* में पाकिस्तान के विस्तारवादी नीति एवं कबीलाई पठानों के दरिंदगी के कारण *जम्मू-कश्मीर (देशी-रियासत)* के *राजा हरि सिंह* ने जनता की सुरक्षा हेतु भारत के साथ जम्मू-कश्मीर के विलय हेतु विलय पत्र पर हस्ताक्षर किया और भारतीय फौजों ने जम्मू-कश्मीर को पाकिस्तान का अंग बनने से रोका तब से आज तक जम्मू-कश्मीर मुद्दे के नाम पर पाकिस्तान का राजनीतिक नेतृत्व वहाँ के आवाम को ठगती आ रही है। आम जनता जब अपने समस्याओं के साथ सड़क पर उतरती है तो कभी भारत से संभावित खतरा व युद्ध होने की संभावना का भय खड़ा कर उनके मांगों को निलंबित किया जाता है तो कभी जम्मू-कश्मीर को जीतने का जनता को सब्ज़बाग दिखाया जाता है, जैसे मानो जम्मू-कश्मीर का पाकिस्तान द्वारा आधिपत्य ही वहाँ की आम जनता के तमाम समस्याओं का समाधान हो। यही स्थिति कमोवेश भारत की राजनीति में भी दीखती है। विपक्ष में बैठने वाली लगभग हर पार्टी ने कश्मीर मुद्दे एवं पाकिस्तान के साथ संबंधों को सबसे ज्यादा भुनाया है। इन दोनों देशों ने इन मुद्दों को सम्मान का, स्वाभिमान का एवं शक्ति प्रदर्शन का मुद्दा बना लिया है और आम जनता के गरीबी-भूखमरी, असुरक्षा, अशांति के समस्याओं को गौण बना दिया है। इन मुद्दों को वास्तविक नजरिये से देखने के बजाय इसे भावनात्मक स्वरूप प्रदान कर दिया है। सीमा के सीमांकन और सीमा संघर्ष के विषयों ने जम्मू-कश्मीर की जनता के संपूर्ण जीवन को ही मानो संघर्षमय, संभावित युद्ध, निलंबित मृत्यु, अशांति, असुरक्षा एवं पिछड़ेपन की स्थिति में ला दिया है। दोनों देशों में व्याप्त सांस्कृतिक समानता एवं पारिवारिक रिश्तों के बंधन को न तो शिमला समझौता मजबूती प्रदान कर सकी और न ही ताशकंद समझौता ही दोनों देशों के रिश्तों में जमी बर्फ को पिघला पा रही है। कभी सांस्कृतिक एकरूपता, कभी मज़हबी पहचान के नाम पर आतंकवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है जो दोनों देशों के रिश्तों को और ज्यादा जटिल एवं समाधान की परिधि से बाहर ले जा रही है। फलतः इस आतंक, आतंकवाद, असुरक्षा, अशांति एवं आरोप-प्रत्यारोप में शोषित, गरीब, वंचित व सर्वहारा वर्ग के हित पिसते जा रहे हैं।

आतंकवाद फल-फूल रहा है और आम आदमी मर रहा है। मन्दिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, चर्च मजहब के नाम पर मानवीय मूल्यों व मानवाधिकारों का हनन किया जा रहा है।

अतः बुद्धिजीवियों, समाज-सुधारकों, हित समूहों, गैर-सरकारी संगठनों एवं मानवधिकार संगठनों को दोनों देशों के सच्चाई को सामने लाकर आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयास करना चाहिए। तथ्यों को भावनाओं के आधार पर नहीं बल्कि उसके निष्पक्ष व सच्चे स्वरूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। आम जनता को वास्तविक स्थिति से अवगत कराते हुए इसके वास्तविक कारणों से भी परिचय कराना चाहिए। राज्य के शोषणकारी-दमनकारी नीतियों उसके स्वार्थपूर्ण नीतियों व आर्थिक वर्ग एवं अन्य शक्तिशाली वर्ग के एक एजेंट के रूप में काम करने की प्रवृत्ति का भी पर्दाफाश करना चाहिए ताकि आम जनता, शोषित, वंचित, सर्वहारा वर्ग में वास्तविक चेतना, वर्ग चेतना का विकास हो और संगठित होकर देश की आंतरिक व वाह्य नीति को *'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय'* के आदर्श पर संचालित किया जा सके। दोनों देशों में विद्यमान संगठनों, संस्थाओं, मानवाधिकार संगठनों गैर-सरकारी संगठनों बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों, कलाकारों, साहित्यकारों, संगीत प्रेमियों, खेल प्रेमियों एवं आम जनता के बीच आपसी संपर्क एवं बातचीत को बढ़ावा दिया जाना चाहिए तभी हम उस स्थिति में पहुँच सकते हैं। जब हम कभी कहा करते थे कि सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा-हमारा, आज हम उसे सारे जहां से अच्छा दक्षिण-एशिया हमारा-हमारा कह ही सकते हैं। दोनों देशों के संबंधों में सुधार के लिए उत्तर आधुनिकतावाद की वैचारिकी जिसमें मिशेल फूको, डेरिडा एडवर्ड सईद के चिन्तन व सिद्धांतों की भी महती भूमिका हो सकती है साथ ही बहु-संस्कृतिवाद की अवधारणा का अमलीकरण भी बड़ा योगदान दे सकता है। दोनों देशों के संबंधों को सामान्य, शांतिपूर्ण, सहिष्णु दिशा में बढ़ाने हेतु काम करने वाले सिद्धांतकारों को इन बिन्दुओं पर भी गहन व गंभीर विचार मंथन करना चाहिए।

*''अतीत के आधार पर वर्तमान रिश्तों को इस तरह से परिभाषित किया जाए। दोनों के संस्कृति में व्याप्त जश्ने मोहब्बत की परंपरा को सरहदों के आर-पार/ निभायी जाए। बस दोनों ही मुल्कों के मन में एक ही बात ताजी रखी जाए। कि ईद की तरह होली भी दोनों मुल्कों में मोहब्बत से मनायी जाए।'**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

यादव, आर0एस0 (2013) -*भारत की विदेश नीति,* पियरर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110017,

दत्त, वी0 पी0 (2009) -*बदलती दुनिया में भारत की विदेश नीति,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नागीरेड्डी, टी0 (2011) -*भारत एक बंधक राष्ट्र : एक मार्क्सवादी लेनिनवादी मूल्यांकन,* तरिमेला नागीरेड्डी मेमोरियल ट्रस्ट

राजकिशोर (2012) -(संपादक) भारत का राजनीतिक संकट, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

ग्रोवर, बी0 एल0 एवं यशपाल (1998) -*आधुनिक भारत का इतिहास,* एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 नई दिल्ली-1100055

राजकिशोर (2014) -(संपादक) मुस्लिम आंतकवाद बनाम अमेरिका- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

BURNS, EMILE (2008); *What is Marxism?*, people's publishing house (p) Ltd, New Delhi-110055,

TROTSKY, LEON (2012); *In Defence of Marxism*, AAKAR Books, Delhi-110091

दूबे, श्यामाचरण (2010) -*विकास का समाजशास्त्र,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002

उर्मिलेश (2010) -(संपादक) उदारीकरण और विकास का सच, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, (प्रा0) लिमिटेड, नई दिल्ली-110002

वेपर, सी0 एल0 -राजदर्शन का स्वाध्ययन, किताब महल, 22-A, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद

चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2005) -*साम्प्रदायिकता, आंतकवाद और जनमाध्यम,* अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0) लि0, नई दिल्ली, 110002

पटनायक, किशन (2015) -विकल्पहीन नहीं है दुनिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002

*सुबोध प्रसाद रजक

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,54-56
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 नवम्बर 2015

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में जीवन सम्बन्धों की त्रासदी

आनंद दास* एवं डॉ. अंशुमाला मिश्रा**

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में जीवन सम्बन्धों की त्रासदी* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *आनंद दास एवं अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

हिन्दी नाट्य परम्परा में जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश की संवेदना को विकसित करने में सुरेन्द्र वर्मा की प्रमुख भूमिका रही है। सुरेन्द्र वर्मा समकालीनता के सिद्धहस्त नाटककार हैं। सन् 1972 में प्रकाशित तीन नाटक संग्रह (जिसमें सेतुबंध, नायक खलनायक विदूषक और द्रौपदी) से लेकर रति का कंगन (2011) में उन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथा-प्रसंगों के माध्यम से परिवर्तित काम-चेतना को अंतर्वस्तु बनाया है। सुरेन्द्र वर्मा ने सन् 1970 के दशक में विवाह के बाद के काम-सम्बन्ध की मर्यादा को तोड़कर प्रेम के मूल्य को स्थापित किया था, तो कुछ मर्यादावादी लोगों को यह बेईमानी लगी थी। अब उनके देखते यह भी कसक रहा है कि अब प्रेम के औजार को और धारदार करने के लिये स्त्री-विमर्श स्त्रीत्व की खोज में देह के लिये देह की प्रवृत्ति तक चल पड़ा है। बहरहाल, काम-चेतना के चित्रण के लिये सुरेन्द्र वर्मा की जितनी तीखी आलोचना हुई, उतनी उन्हें अपार लोकप्रियता हासिल हुई। काम वर्णन को हीन मानने वाली मानसिकता के विरोध में एक ऐसी रंगभाषा का निर्माण करते हैं, जो काम की महनीयता को रंग-क्षेत्र में स्थापित करती है।

हिन्दी साहित्य में अकविता के रूप में कविता अपनी मानवीय-सांस्कृतिक जमीन से थोड़ा नीचे जरूर खिसक गई थी। इसी तर्ज पर कहानी अकहानी बन गई। लेकिन यह साफ है कि कलात्मक उधेड़-बुन और नये साहित्यिक ट्रेंड के बीच भी नाटक अपनी संवेदना नहीं खोता। समकालीन नाटक की परम्परा और धारदार हुई है। रंगमंच की एक विशेषता यह है कि समकालीनता से उसका स्वाभाविक जुड़ाव रहता है। शेक्सपीयर ने मानव जीवन को एक रंगमंच माना है। इसका स्वाभाविक अर्थ यह हुआ कि नाटक एक सामूहिक कला है। समूह की मांग का आह्वान नाटक और रंगमंच के साथ जुड़ा हुआ है। सुरेन्द्र वर्मा अपने नाटक सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक में शीलवती का शब्दों में- मर्यादा!...धर्म!....वैवाहिक सम्बन्ध। . ..सब मिथ्या। ...सब पुस्तकीय....लेकिन मुझे पुस्तक नहीं जीना अब।.....मुझे जीवन जीना है।[1] शीलवती भी अपने पत्नीत्व के परम्परागत संस्कारों अपने स्त्रीत्व की हत्या कर देती है। लेकिन अंत में परपुरूष प्रतोम के साथ रात गुजारने के बाद वह स्त्रीत्व के आधुनिक सत्य तक पहुँचती है और जीवन का एक नया अर्थ लेकर लौटती है।

* शोध छात्र, कलकत्ता विश्वविद्यालय कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) भारत
** वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन महिला महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में यौन-चेतना के चित्रण के साथ-साथ कतिपय स्थलों पर उसकी जनाकांक्षा, विडम्बना व विद्रूपता का भी प्रयोग हुआ है, जिसमें विचार और व्यवस्था विमर्श की उपस्थिति है। वे ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने किनारे बैठकर जीवन की ठाह को नहीं समझा, बल्कि वे गहरे उतरते हैं और जीवन की उपरी चकाचौंध के भीतर के स्याह अंधेरे को बखूबी बयां करते हैं। सेतुबंध नाटक में प्रभावती जब अपनी माँ से यह कहती है- भावना के बिना शारीरिक सम्भोग बलात्कार होता है और मैं उसी का परिणाम हूँ। सेतुबंध नाटक में कालिदास और प्रभावती के परस्पर प्रेम और यौन सम्बन्धों की अवांछनीयता और असामाजिकता से उत्पन्न तनाव, छटपटाहट और बिखराव जनित त्रासदी को रेखांकित किया गया है। प्रभावती अपने पिता के दबाव में आकर एक अनचाहे पुरूष वाकाटक नरेश से विवाह कर लेती है, किन्तु हृदय से वह अपने प्रेमी कालिदास की ही बनी रहती है। प्रवरसेन की मां बनकर भी वह पत्नी नहीं बन पाती। ऐसी स्थिति में यदि परपुरूष पति और पति परपुरूष बन जाये तो क्या आश्चर्य! आधुनिक जीवन का विवाह का काम सम्बन्धी समीकरण कुछ इस प्रकार है- यदि पुरूष अविवाहित है तो स्त्री विवाहित, यदि पुरूष विवाहित है तो स्त्री अविवाहित। सेतुबंध नाटक की यही विडम्बना है। मूक गुड़िया की भांति जीवन की अवहेलना करके अपनी समस्त सूक्ष्म भावनाओं को तिलांजलि देने वाली जैसी सत्री उनके नाटकों की नायिका नहीं है। सुरेन्द्र वर्मा नाटक में आधुनिकतावाद के मनमाने सुख के खुले खेल के प्रतिवाद का मानक है। नाटक का पात्र मल्लिनाग उच्च शिक्षा ग्रहण करने जाता है और शोध-निर्देशिका लवंगलता द्वारा अनचाहे यौन-शोषण का शिकार हो जाता है। वर्मा जी ने विश्वविद्यालयों में चल रहे अनैतिक कार्यों एवं गुरू-शिष्य सम्बन्धों का विकृत रूप उजागर किया है।

स्त्री का तेवर आदर्शों को ही सत्य मानने वाली व्यवस्था को झकझोर देती है और हर परम्परा पर नये सिरे से विचार करने के लिये बाध्य करती है। आठवां सर्ग के माध्यम से लेखक ने कला-क्षेत्र में अश्लील-श्लील और लेखकीय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया है। आषाढ़ का एक दिन का कालिदास यदि दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार ढलकर या स्वयं की महत्वाकांक्षाओं के कारण अपनी रचना-भूमि से उखाड़ दिया जाता है तो आठवां सर्ग का कालिदास अनेक प्रकार की धार्मिक रूढ़िग्रस्तता और राजनैतिक दबावों से ग्रस्त है। नाटककार ने कालिदास के काव्य कुमारसम्भव के आठवें सर्ग में शिव और पार्वती की प्रेम क्रीड़ाओं को साधारण पति-पत्नी के प्रेम-प्रसंगों के रूप में देखा और उसका वर्णन किया है लेकिन धर्माध्यक्षों के द्वारा उसकी अश्लीलता पर आपत्ति की गई। यथा जगतपिता महादेव और जगतजननी पार्वती के भोग विलास का ऐसा उद्यान, ऐसा स्वच्छंद, ऐसा नग्न चित्रण.....इसका रचयिता पापी है। इसके श्रोता पापी हैं।....ऐसे अधर्मी और अनाचारी कवि के सम्मान में समारोह में जो भाग ले, वह पापी है।.....यह सर्ग अत्यंत मर्यादाहीन है।.....यह सर्ग बहुत अश्लील है। कुमारसम्भव पर प्रतिबंध लगाया जाये; क्योंकि कच्चे मस्तिष्कों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।[3] यौन चेतना के अतिवाद की एक घिनौनी, विद्रूप, सड़ान्ध भरी सच्चाई है। पद और प्रतिष्ठा पाने के लिये वह दर्शन विभाग के अध्यक्ष तुंगभद्र के समक्ष स्वयं को समर्पित करती है, उसकी दमित वासना का शिकार होती है लेकिन अपना अभीष्ट पाने के बाद वह इस बूढ़े प्रेमी से मुक्ति चाहती है क्योंकि इस सम्बन्ध में अब इसे अतृप्ति, अकेलेपन व घुटन का अनुभव होने लगा है। वह अपने शिष्य मल्लिनाग की ओर आकर्षित होती है। तुंगभद को यह अच्छा नहीं लगता और वह परीक्षकों पर दबाव बनाकर मल्लिनाग के शोध प्रबंध को अस्वीकृत करवा देता है। मल्लिनाग शिक्षा विभाग में शिकायत करना चाहता है तो लवंगलता उस पर बलात्कार का आरोप लगाने की धमकी देती है। तुंगभद्र, लवंगलता व मल्लिनाग शोध कर्म से जुड़ी तीन पीढ़ियों के प्रतिनिधि हैं जिनके बीच परस्पर स्वार्थपूर्ण यौन सम्बन्ध रहा है। यह नाटक सेक्स के विकृत मूल्यों के विरूद्ध खड़ा है।

सुरेन्द्र वर्मा का दृष्टिकोण प्रगतिशील है। वह स्त्री का अस्तित्व मां, बहन, पत्नी और सहचरी के रूप में तलाशने के बजाय स्त्री रूप में ही तलाशते हैं। वे सभी सड़ी-गली, अंधी परम्पराओं को सिरे से नकार देते हैं। द्रोपदी नाटक में विवाहेतर जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न त्रासदी है। सुरेखा के पति मनमोहन का व्यक्तित्व खण्डित है। वह अनैतिक है, महत्वाकांक्षी है, अर्थ-लोलुप है, कामुक है और आत्मान्वेषी भी। उसके ये विभाजित रूप ही सुरेखा के लिये पांच पति बन जाते हैं। मनमोहन के स्वच्छन्द और कुत्सित रूपों का प्रतिबिम्ब उसके दोनों बच्चों (अलका, अनिल) के जीवन में पूर्णतः लक्षित होता है। अलका, राजेश, अनिल और वर्मा यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त हैं तथा उन्हीं की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील भी। यह नाटक आधुनिकताबोध के विसंगतियों का दस्तावेज है और अपनी सम्वेदना में मोहन राकेश के आधे-अधूरे के करीब है। जीवन की विसंगति कैसे एक स्त्री को वस्तु में तब्दील कर देती है, इसका बेहतरीन चित्रण द्रोपदी में हुआ है। वर्मा जी का दर्शन स्त्री के वस्तुकरण करने

वाली प्रक्रिया का शख्स विरोधी है। कला-क्षेत्र में श्लील-अश्लील का प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद रहा है। अश्लीलता को परिभाषित करना दुष्कर कार्य रहा है। सेक्स सम्बन्धों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अध्ययन अश्लील नहीं है, उसका खुला, सक्रिय प्रदर्शन अश्लील है। पति-पत्नी का यौन-सम्बन्ध तो भावनामयी होते हैं। नाटककार कहते हैं- पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध भी कहीं अश्लील होते हैं, अश्लीलता आरोप करने वालों की दृष्टि में है, उनकी आंखों में है।[4] कालिदास ने स्वयं भी चंद्रगुप्त को स्त्री-पुरूष के बीच के यौन-सम्बन्ध अश्लील नहीं है, का स्पष्टीकरण देते हुये कहा है- संसार में भावना की गहराई और सघनता सबसे अधिक स्त्री-पुरूष सम्बन्ध में ही मानी गयी है।[5] नाटक में पूर्वाग्रहों और हीन भावनाओं से ग्रस्त लोगों की ओछी मानसिकता पर तीखा व्यंग्य है। नाटक सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक में स्त्री अपनी शक्ति से वह शक्तिशाली आमात्य, परिषद् और राजा साहब को धाराशायी कर देती है। कामनवटी बनकर वह सबसे अशिष्ट और अभद्र वार्तालाप करती है। सुरेन्द्र वर्मा स्त्री के इस उग्र, उद्धत, उन्मादपूर्ण और प्रचण्ड छिन्नमस्ता रूप के जरिये स्त्री के चुप्पी वाले मिथ को तोड़ते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा जीवन की अनुभूति का सूक्ष्म चित्रण करते हैं। वे आधुनिक संदर्भ में परम्परागत मूल्यों को चुनौती देते हैं। वर्मा जी आधुनिकता के नाम पर सेक्स के अतिवाद और दुरूपयोग के खिलाफ हैं। स्त्री-पुरूष के बीच सम्बन्ध किस प्रकार के हों और उन्हें किस परिधि व सीमा में रखा जाये? इन सवालों पर विचार करना होगा।

स्रोत

[1]वर्मा, सुरेन्द्र -*सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक,* राधा कृष्णनन् प्रकाशन, दिल्ली 1975, पृष्ठ संख्या 51

[2]वर्मा, सुरेन्द्र -*तीन नाटक; सेतुबंध,* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2005, पृष्ठ संख्या 35

[3]वर्मा, सुरेन्द्र -*आठवां सर्ग,* राधा कृष्णनन् प्रकाशन, दिल्ली 1976, पृष्ठ संख्या 38-39

[4]वही, पृष्ठ संख्या 39

[5]वही, पृष्ठ संख्या 54

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,57-62
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 नवम्बर 2015

चौधरी पण्डित बदरीनारायण उपाध्याय "प्रेमघन" की साहित्यिक अवधारणा

डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *चौधरी पण्डित बदरीनारायण उपाध्याय "प्रेमघन" की साहित्यिक अवधारणा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

''उन्नीसवीं सदी का अन्तिम चरण नवीन और प्राचीन भावनाओं का सन्धिकाल था। यदि एक ओर रचनाकार प्राचीन परम्परा की महानता पर गर्वान्वित होता है, तो अपने आदर्श और गौरव का जहाँ पर भी त्याग दिखाई पड़ता है, वहाँ वह क्षुभित होता है और अपने देश काल और जीवन की अनेक समस्याओं को लेकर अपनी रचनाओं द्वारा अपनी भावनाओं को देश और समाज में प्रकाशित करता हुआ दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु युग में वाणी के जिन साधकों ने हिन्दी को प्राणदान दिया है, उनमें प्रेमघन जी का अन्यतम स्थान है, वे आधुनिक हिन्दी के उन उन्नायकों और प्रवर्तकों में से हैं, जिन्होंने स्वान्तः सुखाय ही हिन्दी की सेवा द्वारा हिन्दी काव्यमंडल में अपना अमिट स्थान प्राप्त किया। प्रेमधन और भारतेन्दु हिन्दी साहित्य के तत्कालीन धुँधले आकाश में प्रतिभा सम्पन्न दो नक्षत्र थे, जिनके प्रकाश से तत्कालीन टिमटिमाते हुए और नक्षत्र प्रकाश पाते थे। प्रेमघन का जन्म सन् 1855 जिला- गोण्डा के दत्तापुर गाँव में हुआ था। वर्षा ऋतु से इन्हें विशेष लगाव था, इसलिए इन्होंने अपना उपनाम भी ''प्रेमघन'' रखा था। ये भारतेन्दु के अंतरंग मित्र थे। प्रेमघन ने विपुल साहित्य की रचना की। भारतेन्दु द्वारा आरंभ किए गए कार्य को आगे बढ़ाया। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्यिक गतिविधि को बढ़ाने के लिए ''तदीय समाज'' की स्थापना की थी, उसी प्रकार प्रेमघन जी ने ''सद्धर्म सभा'' तथा ''रसिक समाज'' की स्थापना की। जिस प्रकार भारतेन्दु ने कविवचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन तथा वालाबोधिनी पत्रिकाएँ निकाली थीं, उसी प्रकार इन्होंने भी साहित्य-सेवा के उद्देश्य से ''आनन्द कादंबिनी'' मासिक तथा ''नागरी नीरद'' साप्ताहिक पत्र निकाला।

* पोस्ट डॉक्टोरल फेलो., हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

काव्य संबंधी अवधारणा

प्रेमघन जी ने अपने काव्य में जिस प्रकार व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति को संनिविष्ट किया है, उसी प्रकार मानव जीवन के स्मृत्याभास के चित्र अपने काव्य जीर्ण जनपद, 'अलौकिक लीला', 'कलिकाल तर्पण' आदि कविताओं में प्रतिष्ठित किया है। कवि के अतीत स्मृति वाले काव्यों में समय की गहरी छाप है, क्योंकि उसकी व्यापक मनोदृष्टि जगत् और जीवन की ओर पड़ी है। भारतीय परिस्थितियों के गंभीर चिंतन के अतिरिक्त प्रेमघन जी को जब कल्पना जगत् पर हम विचरण करते पाते हैं तब कवि भावपक्ष तथा विभावपक्ष के संयुक्त प्रेम काव्य की परम्परागत भावनाओं का चित्रण करता हुआ, प्रेम की विविध दशाओं को, (आलम्बन और उद्दीपन विभावों के अन्तर्गत) मानव जीवन के नित्य और सामान्य स्वरूप से युक्त कर अपने काव्य को अमर करता हुआ दिखाई पड़ता है, जिससे हमें कवि के व्यापक मनोदृष्टि का परिचय मिलता है। काव्य का मानव जीवन से अन्यतम सम्बन्ध है, सच पूछिए तो काव्य में मानव जीवन ही विविध रूपों में वर्णित रहता है। प्रेमघन जी का काव्य उनके जीवन की विविध घटनाओं से युक्त है जो समय-समय पर उनके 'कलम की कारीगरी' के रूप-आनन्द में कादम्बिनी और नागरी नीरद की छटा से हिन्दी काव्याकाश को सुशोभित करता है।

प्रेमघन जी ने अपनी रचनाओं में चाहे वह गद्य हो या पद्य, इस भावना को जितनी प्रधानता दी है उतना भारतेन्दु युग के किसी अन्य लेखक के अन्तर्गत हमें इतने स्पष्ट और प्रभावशाली रूप में नहीं दिखाई पड़ता है। कवि प्रेमघन भारत की दुर्दशा पर बोल उठते हैं, ''मरे विवुध नर नाह सफल चातुर गुन मंडित/ बिगरो जन समुदाय बिना पथ-दर्शक पंडित/ सत्य धर्म के नसत गयो बल विक्रम साहस/ विद्या बुद्धि विवेक विचार रह्यो जस।।''

प्रेमघन जी ने अतीत वर्णन के द्वारा देश में उत्साहवर्धन का कार्य प्रारम्भ किया। इसकी आवश्यकता कवि को इसलिए प्रतीत हुई कि कविता द्वारा जहाँ के वर्णन आदि द्वारा एक ओर भारत की अधोगति का चित्र अंकित किया सकता है तो दूसरी ओर जन-साधारण को अतीत के भावपूर्ण आख्यानों की स्मृति का जागरण करा कर जनता में उत्साहवर्धन का कार्य भी किया जा सकता है। प्रेमघन जी में भारतीयता कूट-कूट कर भरी थी। ये भारत का, भारतीयता का और भारत-हितैषियों के परम पोषक थे। वही भारत के उन उन्नायकों और देशभक्तों में थे, जिन्हें अपनी मर्यादा का सदा ध्यान था। दादा भाई नौरोजी के ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में काला कहे जाने पर प्रेमघन जी हृदय क्षुब्ध हो बोल उठे, ''कारन ही के कारन गोरन लहत बड़ाई। कारन ही के कारन गोरन लहि प्रभुताई।। अचरज होत तुमहुँ सन गोरे बाजत कारे। ता सो कारे कारे शब्द हुँ पर है बारे।।''

प्रेमघन, भारतेन्दु युग के उन कवियों में हैं जो प्राचीन परंपरा से शुरू कर आधुनिकता की ओर बढ़ते गए हैं। प्राचीन परंपरा से युक्त एक उदाहरण देखिए, ''छहरै मुख पै घनश्याम से केश, इतै सिर मोर परवा फहरैं,/ उत गोल कपोलन मैं अति लोल अमोल लली मुक्ता भहरैं। इति भांति सो बद्री नारायण जू दोऊ देखि रहे जमुना लहरैं,/ निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं।।'' (युगल मंगल स्त्रोत)

''बृजवंद पंचक'' प्रेमघन की भक्तिभावूपर्ण रचना हैं। इसमें दोहा, कुंडलियाँ तथा छप्पय है। ''कलिकाल तर्पण में प्रेमघन जी ने भारत के स्वर्ण अतीत एवं वर्तमान दुःखद दशा का चित्रण किया है। भारतेन्दु की रचना ''बकरी विलाप'' से प्रभावित होकर उन्होंने ''पितर प्रलाप' की रचना की। इस रचना में राष्ट्रीयता का स्वर प्रबल है। ''शोकाकुल बिंदु'' की रचना इन्होंने भारतेन्दु के देहावसान पर लिखी थी। निम्नलिखित उदाहरण से आपको स्पष्ट होगा कि विशिष्ट अवसर पर कितनी अनुकूल रचना करते थे, ''अथयो हरिश्चंद्र अमंद चहुँ तम छाप गयो,/ तरू हिंदुन के हित उन्नति को बढ़ते अवहीं मुरझाय गयो। गुन रासि जवाहिर की गठरी अनमोल सो कौन उठाय गयो,/ नित जाके गरूर से चूर रहयो वह हिन्द ते हाय हराय गयो।।''

अलोचन संबन्धी अवधारणा

प्रेमघन जी आधुनिक हिंदी आलोचना के प्रवर्तक हैं। उन्होंने सर्वप्रथम ''संयोगिता स्वयंवर''[1] नाटक की विसतृत समीक्षा विभिन्न लेखों द्वारा ''आनंद कादंबिनी'' पत्रिका में की। इस आलोचना में उन्होंने सर्वप्रथम कतिपय समीक्षा सिद्धांतों की स्थापना की, फिर उसी के आधार पर व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत की। 'प्रेमघन' जी रीतिकालीन आडंबर और चमत्कार के विरोधी थे। वह शिल्प की अपेक्षा कथ्य को अधिक महत्त्व देते थे। भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों के समान उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं को आलोचना

का माध्यम बनाया। 'आनंद कादंबिनी' और 'नागरी नीरद' में उनके आलोचनात्मक लेख बिखरे पड़े हैं। इन्होंने 'आनंद कादंबिनी' के सं0 1938 के अंक 4 और 5 में 'नाटक' शीर्षक आलोचना लिखी। 'नाटक' के संबंध में इनका मत है कि ''नाटक और अभिनय वह वस्तु है जब देखने वालों को इसका परिज्ञान न रह जाय कि हम नाटक देखते हैं, वा सत्यलीला, जिसके शब्द शब्द से रस चूता और पद पद पर नए आनंद का मता मिलता जाए और देखनेवाले उस रस में रँगकर तन्मय दशा को प्रस्तुत हो जाय।''

हिन्दी समालोचना के सन्दर्भ में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का ये कथन- ''समालोचना का सूत्रपात हिंदी में एक प्रकार से भट्ट जी और चौधरी साहब ने ही किया। समालोच्य पुस्तक के विषयों का अच्छी तरह विवेचन करके उसके गुण दोष के विस्तृत निरूपण की चाल उन्होंने चलाई। बाबू गदाधर सिंह ने 'बंगविजेता' का जो अनुवाद किया था उसकी आलोचना कादंबिनी में पाँच पृष्ठों में हुई थी। लाला श्रीनिवास दास के 'संयोगिता-स्वयंवर' की बड़ी विस्तृत और कठोर समालोचना चौधरी जी ने कादंबिनी के 21 पृष्ठों में निकाली थी। उसका कुछ अंश नमूने के लिये नीचे दिया जाता है- यद्यपि इस पुस्तक की समालोचना करने के पूर्व इसके समालोचकों की समालोचना करने की आवश्यकता जान पड़ती है क्योंकि जब हम इस नाटक की समालोचना अपने बहुतेरे सहयोगी और मित्रों को करते देखते हैं, तो अपनी ओर से जहाँ एक खुशामद और चापलूसी का कोई दरजा पाते हैं, शेष छोड़ते नहीं दिखाते।''

''नाट्यरचना के बहुतेरे दोष 'हिंदी प्रदीप' ने अपनी 'सच्ची समालोचना' में दिखालाए हैं। अतएव उसमें हम विस्तार नहीं देते, हम केवल यहाँ अलग-अलग उन दोषों को दिखलाना चाहते हैं जो प्रधान और विशेष हैं। तो जानना चाहिए कि यदि यह संयोगिता स्वयंवर पर नाटक लिखा गया तो इसमें कोई दृश्य स्वयंवर का न रखना मानो इस कविता का नाश कर डालना हैं; क्योंकि यही इसमें वर्णनीय विषय है। नाटक के प्रबंध का कुछ कहना ही नहीं, एक गँवार भी जानता होगा कि स्थान परिवर्तन के कारण गर्भांक की आवश्यकता होती है; अर्थात् स्थान के बदलने में परदा बदला जाता है और इसी पर्दे को बदलने को दूसरा गर्भांक की आवश्यकता होती है; अर्थात् स्थान के बदलने में परदा बदला जाता है और इसी पर्दे को बदलने को दूसरा गर्भांक मानते हैं, सो आपने एक ही गर्भांक में तीन स्थान बदल डाले।'' प्रेमघन जी के साथ पं0 रामचन्द्र शुक्ल का घरेलू सम्बन्ध था। जिस समय आनन्द कादम्बिनी अंतिम बार निकलती थी, उस समय पं0 रामचन्द्र शुक्ल मिरजापुर मिशन स्कूल में ड्राइंग मास्तर थे और शहर के पास ही रमई पट्टी में रहते थे। प्रेस में प्रूफ ठीक रकने का कार्य वे वैतनिक रूप से करते थे। उसी समय की जो उनकी धारणा थी उसका चित्रण प्रेमघन सर्वस्व भाग-1 की भूमिका में उन्होंने क्रिया हैं। पर शुक्ल जी ने प्रेमघन जी की आलोचना पद्धति तथा उनकी शैली पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाला।

किंतु उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का प्रखर स्वरूप 'संयोगिता स्वयंवर' की समीक्षा में मिलता है। इस नाटक की आलोचना नाटक की ऐतिहासिकता, देश, काल, परिस्थिति, भाषा, शैली, चरित्र-चित्रण आदि सभी तत्वों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। स्थान-स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली में नाटक पर प्रहार भी किए गए हैं जैसे एक स्थान वह लिखते हैं कि ''नाटक में पांडित्य नहीं वरन् मनुष्य के हृदय से आपको कितना गाढ़ा परिचय है, यह दर्शाना चाहिए। कृपा करके विचारी निरपराधिनी कवित्व शक्ति के भाव का प्राण ऐसी निर्दयता के साथ न लीजिएगा। लालाजी आपने कभी इस बात पर भी ध्यान दिया है कि स्त्रियों की कितनी मृदु प्रकृति होती है और कितनी लज्जा उनमें होती है।'' प्रेमघन जी नाटकों में मानव प्रकृति के अध्ययन को आवश्यक मानते थे। इसी प्रकार 'वस्तुनेत्तर रसस्तेषां भेदक' के अनुसार वह रस को नाटक का अनिवार्य तत्व मानते थे। उनको 'संयोगिता स्वयंवर' में इस दिशा में दोष दिखाई पड़े। अतएव उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि ''रस उसमें प्रधान दो थे- वीर और श्रृंगार, अंगी कौन है? यह कौन कहे? सच तो यह है कि कोई रस कहीं पर उत्तमता से उदय नहीं हुआ, चित्त का चित्र किसी का ठीक नहीं उतारा गया और जहाँ इसका उद्योग भी किया, वीर को हिजड़े की पोशाक पिन्हाई और सती का स्वकीया को वेश्याओं के श्रृंगार कर दिए। जहाँ श्रृंगार का काम पड़ा आपने नीति और धर्म का उपदेश दिया, जहाँ वीर का मौका आया बीभत्स किया।'' इस प्रकार हम कह सकते हैं प्रेमघन जी ने साहित्य समीक्षा अधिक मात्रा में नहीं लिखी है, किंतु तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनका कार्य विशेष महत्व रखता है। उनकी नाटकों और उपन्यासों की आलोचना में महत्व है। प्रशंसा अथवा निंदा का स्वर असंतुलित नहीं होने पाया है। उनमें पाश्चात्य और भारतीय समीक्षा सिद्धांतों का समन्वय भी देखा जा सकता है।

निबंध संबंधी अवधारणा

प्रेमघन जी के निबंध उनके वैयक्तिक, प्रयास हैं, जिसमें व्यक्तिगत विचार जिस क्रमबद्धता से जीवन से अन्तर जगत् के मार्मिक विचास्थलों को स्पष्ट करते हैं; उसी प्रकार जीवन के सच्चे स्वरूप को भी व्यक्तिगत निबंधों में आप का विषय तो निश्चित ही रहता है, पर उनके विचार किसी परिधि के भीतर आवेष्ठित नहीं रहते, जो प्रासंगिक विषय इन प्रसंगों के अन्तर्गत आते हैं, उनका वहाँ वर्णन पूर्णरूपेण होता है। इन निबन्धों में श्रृंखलाबद्ध विचार हैं। पण्डित वर श्री विज्ञान शेख शासी, विद्या वाचस्पति के धर्म भीरूता का चित्र 'गुप्त गोष्ठी' में बड़ी पटुता से चित्रित है। तत्कालीन समय में भारतेन्दु का व्यक्तित्व महान् और अनुकरणीय था। प्रेमघन जी ने जिस प्रकार 'शोकाश्रु बिंदु में भारतेन्दु की महानता और अपना उनसे व्यक्तिगत सांख्य-भाव के प्रदर्शन का अमिट चित्र '(मित्र क्यों न रोवै तेरो शत्रु क्यों न होवै तऊ पूरो पशु होवै ना तो क्या मजाल रोवै ना)' लिख कर चित्रित किया है, उसी प्रकार गद्य में भी भारतेन्दु अवसान पर अपने हृदय के उद्गारों को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। इन व्यक्तिगत निबन्धों से परिचित हो जाने पर हमें यह कहने में संकोच न होना चाहिए कि जिस प्रकार अंगरेजी साहित्य में मौन्टेन निबन्ध लेखन कला का जन्मदाता माना जाता है, उसी प्रकार प्रेमघन जी भी हिन्दी के मौन्टेन कहे जा सकते हैं व्यक्तिगत निबन्धों में प्रेमघन जी ने जितनी पटुता से सरलता और स्वाभाविकता का इन निबन्धों में समावेश किया है उतनी ही तत्परता से सामाजिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक निबन्धों में भी इन भावनाओं को संनिविष्ट किया है। सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक निबन्धों के अन्तर्गत उनकी आत्मा तत्कालीन सामयिक परिस्थितियों से ओत-प्रोत है।

पत्र संबंधी अवधारणा

प्रेमघन जी के नोट कैसे होते थे? उनके विज्ञापनों के प्रकाशन की क्या शैली होती थी, वे स्थानीय सम्वादों को किस प्रकार प्रकाशित करते थे तथा वे दूसरे पत्रों में समाचार जो छपने को भेजते थे उनका क्या रूप होता था, इसका पूर्ण ज्ञान हमें 'पंच के विज्ञापन', 'स्थानिक संवाद', 'प्रेषित पत्र' शीर्षक उद्धरण से स्पष्ट हो जायेगा।

उदाहरण; किंचित वृत्तान्त आजकल मिरजापुर का लेखन करता हूँ कृपा कर इसको अपने अलौकिक पत्र में स्थान दें मुझे बोधित कीजिए।

जाह्न्वी कोप

ता0 2 अगस्त को इस नगर में क्या समस्त जिला में जैसे श्री गंगा जी ने कृपा की, कभी नहीं थी, वहाँ के वृद्धों के कहने से यह जान पड़ता है कि यद्यपि संवत् 1918 में गंगा जी ने श्री बलदेव जी का चरण स्पर्श किया था तथा उस पार में मझरा इत्यादि सब गाँव तथा और कई पुर बह कर वहाँ की समस्त भूमि जल मान हो गयी थी और बहुत कुछ हानि भी भई थी परन्तु अब की बेर तो मानो श्री गंगा जी ने अपनी महिमा और कोप अपने तटस्थ मनुष्यों को दिखाया। हाय! हाय! जब मैं उस आपत्ति का स्मरण करता हूँ तो रोमांच होता और आँखों से अश्रु डबडबा आता है।

शहर की नहरैं सब बंद हो गई थीं अनुमान होता था कि यदि यह पानी कुछ और बढ़ता तो समस्त नगर सत्यानाश हो जाता, लालडिग्गी का तालाब जिसमें हर साल का पानी तवे के बूँद के समान होता था अबकी गंगा जी का पानी या उसकी मोरी के द्वारा जल से पूर्ण कर दिया और शोभा देख पड़ती रही कि मानो मानसरोवर लज्जित होता था, टाडै के दरी से जल के सूक्ष्म परिमाणु बांढ़ के कारण श्री बाबू गुरुचरण लाल जी के बंगले तक जो ठीक उसी दरी के पर्वत के ऊपर है, उड़-उड़ के आते थे और विचित्र शोभा दृष्टिगोचर होती थी। अष्टभुजी और काली खोह में तो जल प्रवाह और लताओं की लहलहाहट के कारण कैलाश भी झख मारता था। पार में महाराज बनारस के गड़बड़ी का बंगला तो मानों पानी का बताशा भया था तथा कौन जो अयत्न मैली पुरानी कथरी के समान हो गया था, गंगा जी ने धोबिन का रूप धारण कर उसे भली-भाँति धोकर चिकना कर दिया। उसके निवासी मनुष्य खटमल आदि जीवों की भाँति वृक्षों पर दबके।

नाटक सम्बन्धी अवधारणा

प्रेमघन जी ने साहित्यिक विद्या नाटक के ऊपर भी अपने विचारों को लेख के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस अभिव्यक्ति में संस्कृत साहित्य से लेकर पाश्चात्य नाट्यशैली और भारतीय नाटक लेखन पर उन्होंने अपने लेख 'दृश्य रूपक व नाटक' में कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। ''यद्यपि कुछ दिन से यहाँ नाटकों का प्रचार हो चला, पर तो भी ऐसा नहीं जैसा चाहिए; देखिए कि इसी भारत भूमि में एक दिन इसका ऐसा प्रचार था कि जैसा समस्त संसार में नहीं, कालीदास, भवभूति, श्रीहर्ष से महाकवियों ने अपनी विद्या बुद्धि और कविता शक्ति को सावधान हो प्रायः बड़े-बड़े उत्तम और मनोहर नाटकों के रचना में व्यय कर डाला; और असख्य कवियों के सहस्त्रावधि नाटक उत्तम श्रेणी के बन गये। जो यवनों के इतने उत्पात और उपद्रव पर भी आज गए बीते दिन पर सैकड़ों नाटक संस्कृत के हमें देखने में आते और पूर्व समय के दशा की साक्षी देते तथा उस उन्नति की याद दिलाते हैं। बड़े-बड़े महाराजाओं और महाजन, साहूकारों और विद्वानों के मन के बहलाव क्या, किन्तु चित्त के सन्तोष के कारण थे और सदैव सभ्यों के समाज और नरेशों के दरबार तथा हर्ष के कार्यों में इसी से काम रहता बड़े-बड़े गुणी चारण, कथक वा वेश्या, जिन्हें अपनी चतुराई की चमत्कारी दिखानी होती नाट्य में प्रवृत्त होते; और इससे उत्तम दूसरी कोई रीति भी न थी कि जिससे उन्हें उत्तम प्रकार से जीविका प्राप्त होती।[1] ओमघन जी नाटकों के अनुवाद में तत्कालीन लेखकों के द्वारा नाटकों के अनुवाद में कोई त्रुटि न हो इसके लिए कई सुझाव समय-समय पर दिये। ''जानना चाहिए कि नाटक वहाँ तक नहीं है कि जहाँ तक उसमें नकलपन आवै, किन्तु नाटक और अभिनय वह वस्तु है कि जब देखने वाले को इसका परिज्ञान न रह जाय कि हम नाटक देखते हैं वा सत्य लीला; जिसके शब्द-शब्द से रस चूता और पद-पद पर नये आनन्द का मजा मिलता जाय और देखने वाले उस रस में रंग कर तन्मय दशा को प्राप्त हो जायँ, अवश्य उत्तम नाटक और अभिनय वही है, परन्तु तब तक यह कैसे हो सकता है कि जब तक सतकवि की कविता न हो और चतुर नट-नाट्य में प्रवीण न हो निश्चय जानिये कि दोनों एक-एक मिल तब इगारह संख्या प्राप्त करते हैं, केवल बनाने वाला क्या करेगा जब खेलने वाला ठीक नहीं 'गुरु क्या करैं जब चेला न पढ़ैं' हम कह सकते हैं कि यदि कोई उत्तम मण्डली हो तो नाटक तक हर्ज नहीं क्योंकि मण्डली जो बड़ी होती है कवि से खाली नहीं रहती अच्छे-अच्छे नाटकों को भी वे अपने तौर पर सँवारती और बनाती भी हैं, बस यदि वे नाटक जिन्हें हम अच्छे श्रेणी में गिना आये हैं। इस रीत से दुरुस्त करते खेले जायँ तो क्या बुराई हो।''[2]

समाचार पत्र सम्बन्धी अवधारणा

भारतेन्दु युगीन लेखक न सिर्फ साहित्यकार थे अपितु वे पत्रकार भी थे। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में अपनी भावनाओं को सामान्य जन तक पहुँचाने का माध्यम समाचार पत्र बने। अतः तत्कालीन लेखकों का सम्बन्ध किसी न किसी पत्र से अवश्य रहा वे लेखक अपनी भावनाओं को इन्हीं पत्रों में लिखा करते थे। प्रेमघन जी द्वारा प्रकाशित पत्रों, आनन्द-कादम्बिनी और नागरी-नीरद में उनकी आलोचनाएँ भरी पड़ी है। प्रेमघन जी अपने लेख समाचार पत्र या अखबार किसे कहते है? में समाचार-पत्र की अवधारण को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। समाचार-पत्र को जिसे प्रायः अन्य ऐसे मनुष्य कि जो भली-भाँति इसके स्वाद से वंचित हैं केवल यही समझ लिया है कि कलकत्ते में एक लड़की हुई जिसके एक सींग, दो नाक, तीन हाथ, चार पैर और पाँच आँखें हैं। ऐसी-ऐसी बे सिर पैर की खबरें और सामाचार पंसारियों की पुड़ियाँ बाँधने के लिए छपे कागज की पोटली या पुलिन्दा को समाचार-पत्र न्यूज पेपर और अखबार कहते हैं, परन्तु वस्तुतः जब विचार कर विचारजनों के विचार के अनुसार विचारों तो यह आजकल के कला का कल्पद्रुम है और सभी अच्छी और उत्तम देशोन्नति, विद्या, बुद्धि, सभ्यता के प्रचार का उपाय और देश वा जातियों में एकता को उत्पन्न करने को और फूट के फल के सेवन से उत्पन्न रोगमात्र की एकमात्र औषधी और राजा और प्रजा के बीच की सत्य इच्छा और दुःख-सुख तथा प्रसन्नता और अप्रसन्नता प्रगट करने का एक उत्तम सम्बन्ध है; जो दीन अवस्था में पड़े एक देश के भाइयों की दशा को जता दूसरे देश-बन्धनों से उनका उपकार कराने वाला धर्म-कार्य, एक छोटी सी बात को भी दूर-दूर के बड़े-बड़े मनुष्यों पर विदित करने में समथ दूत यही है।

भाषा एवं शैली

भारतेन्दु युग में भाषा विवाद प्रारंभ हो गया था और हिन्दी उर्दू की समस्या उभरने लगी थी। प्रेमघन जी ने सबल तर्कों द्वारा (प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, पृ0 97) हिन्दी के स्वतंत्र अस्तित्व और उसकी अभिव्यक्ति, क्षमता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। भाषा के संबंध में उनके अन्य कई लेख मिलते हैं, जैसे- 'हिंदी, हिंदू और हिंदी', 'हमारी प्यारी हिंदी', 'हमारे देश की भाषा और अक्षर', 'पुरानी का तिरस्कार नई का सत्कार', 'नागरी के पत्र और उनकी प्रणाली', 'भारतीय नागरी भाषा' आदि। इन निबंधों में इनका भाषा विषयक दृष्टिकोण और विवेचनात्मक समीक्षा का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। हमारी प्यारी हिन्दी नामक लेख में प्रेमघन के ये विचार है- ''यद्यपि दस-दस, बीस-बीस कोस ही की दूरी पर भाषा में कुछ-कुछ अन्तर अर्थात् उसके उच्चारण अथवा लवा वा लहजे में भिन्नता हो जाती है, परन्तु शब्दों और क्रियाओं का जबतक विशेष रूपान्तर न हो तब तक उसमें भेद नहीं कहा जा सकता, फिरभी किसी एक आदेश के एक प्रान्त के निवासियों से दूसरे प्रान्त के रहने वालों को यथार्थ समझ पड़ने पर वे दोनों प्रान्तिक भाषायें उस एक ही भाषा के दो भेद वा शाखा मानी जायेंगी; जैसे कि एक वृक्ष की अनेक शाखायें, चाहे वह आकार में सीधी वा टेढ़ी क्यों न हों पर एक ही प्रकार के पत्र-पुष्प से युक्त होने के कारण वृक्ष की संज्ञा में वे अन्तर्गत हो जाती हैं।''[3]

प्रेमघन जी के गद्य-शैली की समीक्षा करते समय हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि वे खड़ी बोली गद्य के प्रथम आचार्य थे। उनके समक्ष उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि व्यक्तियों का समुदाय था, पर उनकी प्रतिभा इन लोगों के प्रभाव से प्रभावित नहीं हुई, फिरभी उनकी अपनी विलक्षण शैली इन लोगों से पृथक् ही रही। प्रेमघन जी ने गद्य लेखन को भी एक कला के रूप में ग्रहण किया, क्योंकि उनके अनूठे पदविन्यासों, कोमलकान्त पदावलियों ने जिस परिष्कृत तथा परमार्जित भाषा का रूप हमें दिया है वह उनकी निजी देन है। उनके पदविन्यास व्यर्थ के आडम्बरों से युक्त नहीं हैं, इनमें अर्थ गाम्भीर्य तथा सूक्ष्म विचार बड़ी पटुता से व्यक्त हैं। जिस कलात्मकता से उनके निबन्ध एक सूत्र में सजीवता और रोचकता के धागे से बँधे हैं कि कहीं एक शब्द भी इधर-उधर किया जाय तो उनकी क्रम-बद्धता ही नष्ट हो जाती है। व्यक्तिगत निबन्धों के अन्तर्गत जितनी सजीवता है उतनी ही मधुरता भी है। सामाजिक निबन्धों में व्यंग के हल्के-हल्के छींटे हैं। भाव अभिव्यंजना तो सब जगह बड़ी पटुता से आदर्शित की गई हैं।

निष्कर्षतः प्रेमघन जी ने जिस प्रकार खड़ी बोली का परिमार्जन किया, उनके लेखन से स्पष्ट है और उसके लिए उनका भगीरथ प्रयत्न श्लाघ्य है। पर खड़ी बोली पद्य के साथ-साथ खड़ी बोली गद्य का भी प्रेमघन जी ने पूर्ण परिस्कार किया और जिसके फलस्वरूप गद्य काव्य में उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, धार्मिक विषयों पर लेख ही न लिखे वरन् अपनी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा साहित्य की सभी विधाओं, नाटकों, निबन्धों, आलोचनाओं एवं रचनाओं में परिमार्जन के साथ-साथ विभिन्न सम-सामयिक घटनाओं की ज्वलन्तता को भी उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग, पृष्ठ संख्या 423, संदर्भ- हिन्दी साहित्य वृहद इतिहास, भाग- 8
आनन्द कादंबिनी, कार्तिक, 1938 विक्रमी
हिन्दी साहित्य का इतिहास -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 257
आनंद कादंबिनी (सं0 1942)
प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, पृष्ठ संख्या 373
प्रेमघन सर्वस्व, भाग-2, पृष्ठ संख्या 465-66

HINTS

[1]*प्रेमघन सर्वश्व,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 49
[2]*प्रेमघन-सर्वस्व,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 55
[3]*प्रेमघन-सर्वस्व,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 65

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,63-66
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 दिसम्बर 2015

हिन्दी को वैश्वीकरण (ग्लोबल) बनाने के लिये मु- और चुनौतियाँ

डॉ. हेमराज*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *हिन्दी को वैश्वीकरण (ग्लोबल) बनाने के लिये मु- और चुनौतियाँ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हेमराज* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

संविधान के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी को राष्ट्र भाषा का पूर्ण दर्जा दिया जाना था, जो कि आज तक राजनीति का शिकार होने के कारण सम्भव नहीं हो सका। देश के नेता विदेशों में कभी कभी हिन्दी में भाषण देने का साहस तो करते हैं परन्तु उनके मन में अंग्रेजी की हूक ही रहती है। सरकार की हिन्दी वैश्वीकरण के लिए रूची बहुत कम है क्योंकि इससे सरकार को कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। यह तो राष्ट्र के गौरव और अस्मिता का विषय है। जिस विषय की अपने ही घर में अवहेलना हो उसे विश्व में मान-सम्मान मिलने की सफलता कहां तक सम्भव है? पहले अपने में से हिन्दी प्रयोग करने की हीन भावना को समाप्त करना होगा और फिर राजनीतिज्ञों व सरकार को इस विषय की महत्ता को समझते हुए विशेष प्रयत्न करने होगे। विद्वानों और विशेषज्ञों को हिन्दी भाषा की दुरूहता, कृत्रिमता और अस्पष्टता को समाप्त करते हुए मानकीकरण की और विशेष ध्यान देना होगा, ताकि हिन्दी को वैश्वीकरण होने के लिए मुद्दे और चुनौतियों में कमी हो सके।

वर्तमान में हिन्दी हिन्दी को विश्वव्यापी बनाने के लिए कई मुद्दे और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। किसी भी भाषा के वैश्वीकरण होने का कितना महत्त्व होता है, अंकित घटना द्वारा स्पष्ट है। एक शासक ने अत्यंत सुन्दर मीनार बनाने का निर्णय किया। उसकी आंतरिक प्रवल इच्छा थी कि मीनार इतनी सुन्दर बननी चाहिये की सारे दुनियाँ उसकी सुन्दरता की चर्चा करे, क्योंकि निर्माण के लिए धन की कोई कमी नहीं थी। शासक को स्थानीय कारीगरों पर विश्वास नहीं था कि वह इतनी सुन्दर मीनार बनाने में सक्षम है। इसीलिए उसने विदेशों से उत्कृष्ट कारीगरों को मीनार निर्माण हेतु आमंत्रित किया। कारीगरों के पहुँचने के बाद एक दिन उनकी उपस्थित में भूमी पूजन उपरान्त मीनार का शिलान्यास करते हुए निर्माण कार्य का आदेश दे दिया। परन्तु भिन्न-भिन्न विदेशों से आए हुए कारीगरों को एक दूसरे की भाषा समझ न आने से इतनी परेशानी और कठिनाई बढ़ गई कि अंत में शासक को मीनार का कार्य बन्द करना पड़ा और कारीगरों को अपने अपने देश में वापिस भेज दिया गया।

* [सेवा निवृत्त] प्रधानाचार्य, श्रीमती ज्वाला देवी बी.एड्. कॉलेज [संघोल-ऊँचा पिण्ड] फतेहगढ़ साहिब (पंजाब) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इसलिए यदि भूतकाल में भी भाषाओं के वैश्वीकरण होने का इतना महत्त्व था तो आज विकास और ज्ञान विज्ञान के युग में किसी भाषा के वैश्वीकरण होने का महत्त्व कितना हो सकता है? स्वतः स्पष्ट है। हिन्दी ग्लोबल तो है, परन्तु इसके वैश्वीकरण में बहुत से मुद्दे और चुनौतियों से संघर्ष चल रहा है।

भारत में हिन्दी की स्थिति; हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा, राजभाषा और सम्पर्क भाषा है। इसकी शब्दावली अत्यन्त समृद्ध होने के कारण यह विचारों का आदान-प्रदान करने का सशक्त माध्यम भी है। परन्तु यह खेद का विषय है कि आज हिन्दी कई कारणों से अपने ही घर में उपेक्षा का शिकार बनी हुई है। द्वि-भाषिक नीति के कारण अंग्रेजी भाषा ने हिन्दी भाषा को प्रमुख स्थिति पाने की ओर बढ़ने ही नहीं दिया, बल्कि कार्यालयों में अंग्रेजी पन्नों का हिन्दी में अनुवाद ही किया जाता है। मौलिक रूप में हिन्दी का प्रयोग बहुत कम होता है। जापान और रूस ने जिस तरह से अपनी राष्ट्र भाषा को महत्व देते हुए जो विकास किया है भारत उसकी तुलना में अभी भी गुलामी की जंजीरों को ओढ़े हुए है। लार्ड मैकॉले ने अपने सम्बन्धी को भारत में अपने पांव फैलते देखकर एक बार लिखा था, ''यदि यह गति रही तो वह दिन दूर नहीं जब भारतीय रंग रूप से जरूर हिन्दुस्तानी लगेंगे, पर दिल और दिमाग दोनों से पूरी तरह अंग्रेज हो जायेंगे''[1]। अब भारत में गोरों की अपेक्षा भारतीय काले अंग्रेज ही हिन्दी को सर्वव्यापी भाषा बनने में रूकावटों के अंबार खड़े कर रहे हैं। यहीं तक ही नहीं लोगों में भाषा के नाम पर दंगे करवाने में भी कोई कसर नहीं छोड़ते है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे पट्टी पोंचते हैं कि ईमानदार अधिकारियों को उल्लू बनाकर अपने को चतुर समझते हैं। नहीं तो आज हिन्दी के वैश्वीकरण की स्थिति इतनी अच्छी होनी थी कि अंग्रेजी बगले झांकते रह जाती।

हिन्दी हीन भावना का शिकार; भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र ने निज भाषा को ही उन्नति का मूल माना था। परन्तु आज भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग में कार्यालयों और मंत्रालयों में हिन्दी का प्रयोग करने वालों को हीन दृष्टि से देखा जाता है, बल्कि अंग्रेजी वाले तो उन्हें नालायक भी समझते हैं। अंग्रेजी का सही प्रयोग भारत में केवल 5 प्रतिशत लोग ही कर पाते हैं, फिर भी उन्होंने अपना दबदबा बना रखा है कि उनके बिना काम नहीं चल सकता। चूँकि केन्द्र सरकार का लगभग 80 प्रतिशत कार्य अंग्रेजी में ही होता है। केन्द्रीय संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में अंग्रेजी का ही बोलबाला है और हिन्दी को दरकिनार कर दिया जाता है।

हिन्दी शिक्षा का माध्यम बनने में चुनौती; एक ओर तो हम हिन्दी को यू.एन.ओ की भाषा के दावेदार बनते हैं, परन्तु दूसरी ओर हम अपने ही घर मे हिन्दी को शिक्षा का माध्यम नहीं बना सके। ''गधे के बच्चे से भी पूछा जाए कि तुझे गधे की भाषा में ज्ञान देना चाहिए या सिंह की भाषा में''? तो वह यही कहेगा कि सिंह की भाषा चाहे जितनी भी अच्छी हो, मुझे तो गधे की भाषा ही समझ आएगी, सिंह की नहीं''।[2] स्वतन्त्रता के पश्चात् विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने का जोर इतना बढ़ गया कि वह महँगाई की बढ़ौतरी को भी मात दे गया। सरकार ने तो अंग्रेजी माध्यम वाले विद्यालयों को लोगों से फीस के नाम पर धन बटोरने की खुली छूट दे रखी है और शिक्षा का व्यापारीकरण कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में हिन्दी के वैश्वीकरण होने का प्रश्न स्वतः ही सरकार के घोटालों और चालों, नीति और नियत से लुप्त होकर बहुत पीछे धकेल दिया जाता है।

विदेशों में हिन्दी का कम प्रचलन और हिन्दी बोलने वालों की कमी; हिन्दी सशक्त और समृद्ध भाषा है, परन्तु वास्तविक स्थिति ऐसी है कि अंग्रेजी को ही केवल अन्तर्राष्ट्रीय भाषा माना जाता है। भारत के लोगों में विदेशों मे जाकर धन कमाने की बड़ी प्रबल इच्छा होती है। इसलिए वह हजारों रूपए खर्च करते हुए अपनी भाषा को छोड़कर अंग्रेजी सीखने के लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। विदेशों मे पहले से ही हिन्दी बोलने वाले लोगों की कमी है, जो लोग हैं भी वह अपना हित साधने के लिए हिन्दी को वैसे ही बिसार देते हैं। सरकार इसकी तरफ कुछ विशेष ध्यान नहीं देती। भारतीय लोग एकत्रित होकर तो हिन्दी में वार्तालाप कर लेते हैं, परन्तु उनकी संतान हिन्दी भाषा से अपरिचित रहती है। इसलिए विदेशियों मे हिन्दी के प्रति रूचि को बढ़ाना होगा। क्योंकि ''हिन्दी तोड़ने वाली नहीं, जोड़ने वाली भाषा है'' हिन्दी की यह बड़ी विशेषता है कि इसने अपने में अन्य भाषाओं के बहुत शब्दों को ग्रहण कर लिया है।

हिन्दी में कैरियर की डगर; भारतीय समाज के लोगों में यह एक भ्रम व संदेह है कि अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी में व्यक्ति के विकास की राह इतनी उज्जवल नहीं है, जितनी की अंग्रेजी के बल पर हो सकती है। इस सत्य को मैं व्यक्तिगत तौर

पर भी मानता हूँ, क्योंकि मेरा भी कई बार ऐसी आसामियों पर चयन सम्भव नहीं हो सका, यहां पर अंग्रेजी का दबदबा था। किसी भाषा के वैश्वीकरण में सरकार, व्यापार और बज़ार का मुख्य हाथ होता है। जिस भाषा को विज्ञापनों में प्रमुखता मिलेगी उस भाषा का वैश्वीकरण स्वतः बढ़ता चला जाएगा। लेकिन सबसे पहले भाषा के प्रति साकारात्मक भाव रखना जरूरी होगा।

हिन्दी के वैश्वीकरण के लिए नामात्र बजट का प्रावधान; इस संसार में शायद ही कोई ऐसा काम होगा, जिसमें धन की आवश्यकता न पढ़ती हो। कहावत भी सच्ची है कि ''दाम बनाए काम और कौन करे सेवा निष्काम''। जब सरकार ही इस विषय पर मूक दर्शक है, तो और कौन इस शुभकार्य का श्री गणेश करेगा? हिन्दी वैश्वीकरण के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है कि बजट का प्रबन्ध न होना, अलग मंत्रालय और नीति का तय न होना, सही मूल्यांकन का न होना आदि विशेष चुनौतियां हैं।

हिन्दी वैश्वीकरण के लिए हिन्दी अभिव्यक्ति की शैली और नई शब्दावली की चुनौती; स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी में विविध विधाओं का विकास होने के साथ-साथ विषयों के अनुकूल नई शैलियों और नई शब्दावली का विकास ज्ञान-विज्ञान की बढ़ौतरी के कारण हुआ, जिसमें लेखक का अपना प्रभुत्व अधिक प्रभावी दिखाई देने लगा। लेकिन इन शैलियों और शब्दावली में अंग्रेजी भाषा का अमिट प्रभाव भी दिखाई देने लगा, जिससे हिन्दी की शैली दुरूह, अपरिचित और कठिन लगने लगी। हिन्दी में उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, खड़ी बोली और अन्य भाषाओं की शब्दावली का खुलकर प्रयोग किया गया, जिससे हिन्दी की मौलिकता का कुछ हनन भी हुआ है।

हिन्दी भाषा के मुद्दे पर राजनीतीकरण की चुनौती; जिस भाषा को अपने ही राष्ट्र में पंगु समझ लिया जाए उसके वैश्वीकरण की स्थिति का अंदाजा लगाना कोई कठिन बात नहीं है। हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने से पहले यह कहा गया कि यह इतनी विकसित भाषा नहीं कि इससे राजकाज संभव हो सके और न ही इसके द्वारा आधुनिक विज्ञान की शिक्षा सम्भव है। इसमे शब्दावली की कमी है। राजनैतिक लोगों ने भाषा के नाम पर देश में विचित्र समस्याएं खड़ी कर दी। ''भाषा की राजनीति इतनी बढ़ी कि अहिन्दी भाषियों में भाषा को लेकर असुरक्षा की भावना पैदा होने लगी और मन मे यह विश्वाश पैदा किया जाने लगा कि हिन्दी राज भाषा के पद पर आसीन हो जाने से हिन्दी भाषी अधिक लाभान्वित होंगे और अहिन्दी भाषी उन लाभों से वंचित हो जायेंगे। परिणामस्वरूप हिन्दी विरोध बढ़ता गया''[3] और भारत में अब अंग्रेजों के जमाने से अंग्रेजी का प्रयोग कहीं अधिक बढ़ गया है। हिन्दी वैश्वीकरण का मुद्दा सरकार को कहां दिखाई देता है? दोहरी नीति के कारण हिन्दी अंग्रेजी से पिछड़ गई और हिन्दी को क्षेत्रीयता का अभिशाप सहना पड़ रहा है।

हिन्दी के वैश्वीकरण में हिन्दी की दुरूहता, अस्पष्टता और कृत्रिमता का बाधक होना; भाषा कोई भी हो वह सहज सरल और जन मानस के लिए होनी चाहिए। भारत में अंग्रेजी रूपी शासन होने के कारण अंग्रेजी भाषा का प्रचलन प्रमुख था। सरकारी काम काज में स्वतन्त्रता के बाद अंग्रेजी के हिन्दी अनुवाद का प्रचलन बढ़ा, जिससे हिन्दी में दुरूहता और अस्पष्टता की झलक दिखाई देने लगी और अनुवाद करने से कृत्रिमता स्वतः ही आ जाती है। 'हिन्दी में एक हद तक कृत्रिमता अथवा अटपटापन देखने को मिलता है''[4] हिन्दी का विकास सहज रूप में होना चाहिए न कि उसके वास्तविक स्वरूप को खंडित किया जाए। वास्तव में हिन्दी भाषा को कठिन महसूस करने की समस्या भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक अधिक है अतः वास्तविक कठिनाई न मात्र ही है।

लोगों द्वारा हिन्दी में काम करने की इच्छा की कमी; कई बार छोटी-छोटी घटनाओं से ऐसा अनुभव होता है कि लोगों में हिन्दी में काम करने की इच्छा का बहुत अभाव मिलता है। देखिए- हम सदैव अपने हस्ताक्षर अंग्रेजी में करते हैं। अपनी नेम प्लेट, पत्र का पता और नाम अंग्रेजी में लिखने को प्राथमिकता देते हैं। जिस काम को हम तन मन से नहीं करते और उसको यदि किसी प्रलोभन से करें तो भी परिणाम सार्थक नहीं रहेंगे। ''अंग्रेजी में काम करके अपने को श्रेष्ठ समझने की मानसिक दास्तां के चलते हिन्दी में काम करने की लग्न तो दूर उत्साह भी पैदा हो पाना सम्भव नहीं है''।[5] पता नहीं भारतीयों में हिन्दी के प्रति समर्पण की भावना में इतनी कमी क्यों है? शायद वह इस भ्रम में हैं कि हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी द्वारा रोजी-रोटी की गारंटी है। विदेशों में तो लोग अपनी राष्ट्र भाषा के प्रति अपनी जान तक न्यौछावर

करने से पीछे नहीं हटते। भारतवासियों में राष्ट्रीय भावना की बहुत कमी है तो ऐसे में हिन्दी को ग्लोबल होने में चुनौती तो मिलेगी ही।

विश्वव्यापी स्तर पर हिन्दी की प्रतिष्ठा बनाए रखने में उदासहीनता; अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्पर्क स्थापित करने के लिए केवल अंग्रेजी को सक्षम माना जाता है और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और प्रौद्योगिक विषयों की उपलब्धता अंग्रेजी में ही सम्भव है। हिन्दी द्वारा ऐसा ज्ञान प्राप्त कर सकना असम्भव मान लिया गया है। अतः सरकार द्वारा भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को प्रतिष्ठित करने की दिशा में गंभीर प्रयास नहीं किए गए हैं, बल्कि सरकार भी अंग्रेजी के पक्ष में ही अपना सशक्त मत रखती है, अन्यथा सरकार को इस पहलु पर जाग्रत होकर उचित कदम बिना किसी देरी से उठाने चाहिए। जिन कार्यों में उल्लंघन की दशा में किसी दंड का विधान नहीं, उनका भी कोई समाधान नहीं।

इलैक्ट्रोनिक उपकरणों के बढ़ते प्रयोग के साथ हिन्दी को जोड़ने की धीमी गति; बढ़ते कंप्यूटरीकरण व अन्य इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों के प्रयोग से हिन्दी के विकास की गति धीमी हुई है क्योंकि लोगों के मन में यह बात घर कर गई कि हिन्दी में कम्पयूटर पर काम नहीं किया जा सकता। जबकि वास्तविकता यह है कि हिन्दी में कम्पयूटर सुविधा उतनी उपलब्ध नहीं, जितनी अंग्रेजी में उपलब्ध है। एक कारण और भी है कि हिन्दी में लिखने, टाइप करने और आशुलिपि की गति अंग्रेजी की अपेक्षा कम आंकी गई है। वास्तविकता यह है कि अभी तक लोगों में हिन्दी में काम करने के लिए वांछित अनुभव की कमी है, जो कि हिन्दी वैश्वीकरण के लिए बड़ा मुद्दा भी है।

हिन्दी का मानकीकरण; हिन्दी के मानकीकरण से अभिप्राय हिन्दी भाषा के शुद्धीकरण और विदेशी वांछित तत्वों से मुक्त रखते हुए स्वदेशी प्रतिमानों को विकसित करने से है। परन्तु समय और देश की आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक शक्तियों के प्रभाव से मानकीकरण में परिवर्तन की सम्भावना भी रहती है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हिन्दी के मानकीकरण की समस्यों से जूझना पड़ रहा है। जैसे साईकिल के स्थान पर द्विचक्रिक और रेल के अर्थ में लोहपथगामिनी शब्दों का प्रचलन सहज नहीं हो सका। विद्यार्थी-विद्यार्थी, द्वारा-द्वारा आदि। इस प्रकार से विकास के नए क्षेत्रों में हिन्दी के मानकीकरण शब्दों की समस्या तो है, परन्तु इस सम्बन्धी प्रयास निरंतर हैं, ताकि हिन्दी के वैश्वीकरण में सहायता मिल सके।

निष्कर्ष

हिन्दी के वैश्वीकरण के लिए केन्द्र सरकार और बाजारवाद का अति उत्तम दर्जे का स्थायी सहयोग चाहिए। इसके लिए अधिक से अधिक बजट का प्रवाधान और रोजगार के ज्यादा अवसर केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को ठोस नियत और निति से करना चाहिए। हिन्दी वैश्वीकरण के लिए जनमानस का सहयोग तो प्रथम है ही, क्योंकि वह विदेशी कठिन भाषा की अपेक्षा हिन्दी में सहज महसूस करते हैं। वास्तव में हिन्दी के वैश्वीकरण का मुद्दा भी केन्द्र सरकार की नीतियों पर पर निर्भर करता है।

सूची

शिक्षा बचाओ आन्दोलन, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, नई दिल्ली-28 प्रकाशन क्रमांक-49, नवम्बर 2009 पृष्ठ संख्या 18

शिक्षण विचार -(लेखक) विनोबा, प्रकाशक-सर्वसेवा संघ-प्रकाशन वाराणसी, संस्करण-छठवां, पृष्ठ संख्या 53

प्रशासनिक हिन्दी की चुनौतियाँ और समस्यायें -इग्नो, दिल्ली, पीजीडीटी-04 पृष्ठ संख्या 51-53

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,67-72
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 दिसम्बर 2015

मोहन राकेश की नाट्य भाषा

डॉ. नमिता जैसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मोहन राकेश की नाट्य भाषा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *नमिता जैसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी नाट्य-जगत में भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद के बाद यदि कोई नाम उभरता है तो मोहन राकेश का। मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य के उन नाटककारों में से है जिन्होंने अपनी लेखनी से सम्पूर्ण नाट्य-साहित्य को समृद्ध किया है। हिन्दी नाटक और रंगमंच को ही नयी दिशा नहीं दी, बल्कि भारतीय नाट्य परम्परा को भी प्रतिष्ठित किया है।

राकेश से पहले भी नाटक साहित्य था, जिसकी भाषा साहित्यिक थी, जिसे नाटककार साहित्यिक प्रभाव के लिए लिखते थे। जब यह भाषा रंगमंच पर प्रयुक्त होती थी तो उस समय प्रेक्षक और मंच बीच दीवार खड़ी हो जाती थी। जिससे भाषा के स्तर पर हिन्दी नाटक को गति नहीं मिल सकी। ऐसे समय में मोहन राकेश ने नाट्य-भाषा की तलाश की जो अपने समय के जटिल जीवन-अनुभव को प्रमाणिक रुप से अभिव्यक्त कर सके। नाट्य भाषा की बुनावट की सही पहचान के लिए हिन्दी नाटक में उनका सबसे बड़ा योगदान है। उन्हें इस बात का बखूबी अहसास था कि पुरानी भाषा आधुनिक कथ्य का वहन नहीं कर पाएगी, जो दृश्य हो, जो मंच की भाषा हो, ज्यादा प्रत्यक्ष, ज्यादा विश्वसनीय और प्रभाव में शब्दों से कहीं अधिक शक्तिशाली हो। हिन्दी नाट्य साहित्य के नाट्य भाषा के सम्बन्ध में नयी तलाश का अनवरत प्रयास सर्वप्रथम मोहन राकेश में दिखाई देता है। राकेश जी साहित्यिक भाषा को लेकर कितने जागरूक थे, यह 'बकलम खुद' में अभिव्यक्त उनके इस वक्तव्य से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है, ''अभिव्यक्ति के लिए भाषा से उलझने की सदस्यता हर लेखक के सामने आती है, अर्थात् हर सचेत और अनुभूति प्रवण लेखक के सामने। समस्या नहीं आती तो उन लोगों के सामने, जो अनुभूति और चिन्तन की दृष्टि से अन्दर से बिल्कुल साफ है या केवल कुछ बेसिक अनुभूतियों और विचारों के दायरें में सोचते रहते हैं। उन्हें अपने मन की हर बात के लिए उपयुक्त भाषा जरूर मिल सकती है। क्योंकि उनके मन में की हर बात पहले से ही किसी न किसी को कहीं और सोची हुई बात होती है। हजारों बार कहीं और सोची हुई बातों की कार्बन कापी तैयार

* [पी.डी. एफ.] हिन्दी विभाग [कला संकाय] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

करने में समस्या कहाँ पैदा होती है? जब एकाध विचार और दो-एक अनुभूतियों से आगे व्यक्ति का मन यात्रा ही न कर पाता हो तो उलझे हुए रास्ते पार करने की समस्या ही नहीं होगी, उसके लिए साधन ढूँढने की बात तो बाद में आती है।[1]

मोहन राकेश ने आधुनिक यथार्थ और कथ्य को सम्प्रेषित करने के लिए नयी नाट्य-भाषा की तलाश की। जिसमें स्त्री-पुरुष के बदलते मानदण्ड, आधुनिक मानव की भीतरी संघर्ष, भीड़ के बीच अकेले होने की तीव्र अनुभूति, महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में निष्फल, हताश चेष्टाओं से जूझने का भाव, इन सब को अभिव्यक्ति देने के लिए भाषा की बिम्बात्मक, प्रतीकात्मक शक्ति का प्रयोग किया है। राकेश जी ने 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों का राजहंस' को ऐतिहासिक आधार बनाकर लिखा है जिसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, फिर भी भावुकता से भरी और आधुनिक ध्वनि और लययुक्त संयमित भाषा है। 'आधे-अधूरे' सामाजिक यथार्थवादी नाटक है जो समकालीन जीवन के तनाव को अभिव्यक्त करता है।

मोहन राकेश 'शब्द' को बुनियादी एवम् अनिवार्य तत्व मानते हैं। दृश्य नाटक का अनिवार्य तत्व होते हुए भी अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। क्योंकि शब्द के बिना संवाद का निर्माण नहीं हो सकता है। संवाद शब्द की ही परिणति है। रंगमंच की इस शब्द निर्भरता के कारण प्रत्येक नाटककार की सफलता शब्दों और ध्वनियों के सार्थक संयोजन में ही निहित है। राकेश जी का मानना है कि नाटक में अलग से दिए गए रंग निर्देश या प्रस्तुति की कई सामग्री महत्वपूर्ण नहीं। जितना शब्दों और ध्वनियों का संयोजन क्योंकि रंगमंच पर बिम्ब का उद्‌भव शब्दों के बीच से होता है। रंगमंच में शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका को उद्‌घाटित करते हुए राकेश लिखते है, ''रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह माध्यम की सीमाओं में शब्दों के संयम से हो सकता है, उनके अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग से नहीं। शब्दों की बाढ़ से बिम्ब को जन्म देने के साथ-साथ उस बिम्ब से संयोजित रहने की सम्भावना भी शब्दों से होनी आवश्यक है।''[2] मोहन राकेश की भाषा के कई स्तर है। उनके पहले दोनों नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में कठिन संस्कृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है। जैसे- उपत्यकाएँ, विचक्षणता, अग्निकाष्ठ, अंकुश, दुहिता, तल्प, उपवेश, ग्रह, आत्मश्लाघा, क्रीत, स्थपति, परिसंस्कार, श्लक्षण, शिलाएं, क्रीडा-शैल, उपार्जित, वारागनाएँ, पत्र धूलि, अभ्यागत प्रान्तर विक्षुब्ध आदि।

'लहरों के राजहंस' की भाषा अपेक्षाकृत सहज है। जैसे- तथागत, आकृति, हंस, ताल, लहर, छाया, मृग, झुला, जंगल, दर्पण आदि। 'आधे-अधूरे' यथार्थवादी नाटक है। इस नाटक की भाषा ही सबसे बड़ी ताकत है जो वर्तमान समय के तनाव को उजागर करने की सफल हुई है। इसमें नाटककार ने हिन्दी, उर्दू की सम्मिलित शब्दावली युक्त भाषा द्वारा एक मध्यवित्तीय स्तर से निम्न मध्यवित्तीय स्तर तक आए परिवार की समस्याओं को प्रकट किया है। यह भाषा आज के शहरी मध्यवर्ग की भाषा है। अंग्रेजी शब्दों में ट्रे, मार्केट, बाँस, प्रेस, फैक्टरी, टैक्सी, फ्रिज, ममा, डैडी, अंकल, सोफा, बैग, फिट, क्लिप, डायनिंग टेबल, शेव, रबड़स्टैम्प आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों की तुलना में कहीं उर्दू, फारसी शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। मोहन राकेश के अनुसार, ''उनके इस दौर के नाटकों की भाषा में, अधिकतर उर्दू का प्रयोग है फिर उसमें मेरी लोक-भाषा, कुछ स्थानीय मुहावरें कुछ अंग्रेजी भाषा के शब्द और अभिव्यक्तियाँ भी उसमें शामिल है।[3] आधे-अधूरे में मुहारवेदार भाषा का प्रयोग किया गया है। जो अभिव्यक्ति में तीव्रता प्रदान करते है। जैसे- लगाम खींचना, ज़िन्दगी ख्वार करना, घुल-घुल कर मरना, मन में गुबार भरना, मारा-मारा फिरना, जिन्दगी चौपट करना आदि। नाटक में एक स्थान पर तुतली भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे- तुझ नई तैना है, बैथ दा तुलछी पल औल तछलीवे तात तितनी तछबीलें ताती ऐ अब तहत लाज मुन्ने ने? अगर कुछ नहीं कहना था तुझे पहले ही क्यों नहीं अपनी जबान.....?[4]

नाटक में भाषा की पहचान संवाद से होती है क्योंकि भाषा संवाद में ही ढलकर आती है। इसलिए नाटक में संवाद से अलग भाषा का प्रश्न ही नहीं उठता। संवाद अभिव्यक्ति का सक्षम, समर्थ व सशक्त माध्यम है। संवाद ही चरित्र और कथानक का गति प्रदान करते है। इसलिए नाटकों में संवाद का विशेष महत्व है। नाटककार छोटे-बड़े संवाद, बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से पात्रों की पुनः स्थिति को आसानी से उद्‌घाटित करता है।

राकेश अपने पहले दो नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन' एवम् 'लहरों के राजहंस' में साहित्यिक संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। जिसके कारण नाट्य समीक्षकों ने राकेश को प्रसाद की परम्परा का वाहक माना लेकिन कई मायने में राकेश की नाट्य भाषा, प्रसाद की नाट्य भाषा बुनियादी रूप से भिन्न है। प्रसाद के नाटकों काव्यात्मक और आलंकारिता कई स्थानों

पर नाट्यभाषा को बॉधती हुई चलती तो है पर रंग-सिद्धि में बाधा उत्पन्न करती है। जबकि राकेश की भाषा साहित्यिक होते हए भी नाटकीय सम्भावनाओं से युक्त एवम् बोल-चाल की भाषा के काफी निकट है। इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :

''मल्लिका; मां, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौन्दर्य का ऐसा का साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौन्दर्य अस्पृश्य होते हुए भी माँसल हो। मैं छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि वह क्या है जो भावना को कविता रूप देता है। मैं जीवन में पहली बार समझ पायी कि क्यों कोई पर्वत-शिखरों को सहलाती मेघ-मालाओं में खो जाता है, क्यों किसी को अपने तन-मन की अपेक्षा आकाश में बनते-मिटते चित्रों का इतना मोह हो जाता है।.....क्या बात है माँ इस तरह चुप क्यों हो?''[5]

''सुन्दरी : बोल नहीं! चुपचाप सुन/ कलरव धीरे-धीरे शान्त पड़ जाता है।''

इस स्वर की कहीं तुलना है? कह नहीं सकती क्या अधिक सुन्दर है- ओस से लदे कमलों के बीच राजहंसों के इस जोड़े की किलोल या इस झुटपटे अंधेरे में दूर से लदे सुनाई देता कूजन। आज पहली बार इन्हें इस समय बोलते सुना है। (जरा हँसकर) कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमल-ताल के पास आकर कभी दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे, फिर काँपती लहरें जिधर ले जाएँगी, उधर को तैर जाएँगे। सोचती हूँ उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी-तट पर जाकर उपदेश देने को नहीं होगा। चाहूँगी उस दिन.....।''[6]

उपर्युक्त उदाहरण से बिल्कुल स्पष्ट है कि साहित्यिक भाषा होते हुए भी बोलचाल के काफी निकट है। राकेश जी ने एक विशेष काल खण्ड को दर्शाने के लिए संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। उनके प्रारम्भिक नाटकों की भाषा की विशेषता को दर्शाते हुए गिरीश रस्तोगी ने लिखा है- ''राकेश ने साहित्यिक भाषा को नाटक के अनुरुप ढाल लिया है, उसे रंगमंच की भाषा के निकट ला दिया है। उनके दोनों नाटकों की भाषा केवल इस मायने में साहित्यिक है कि वह संस्कृत-निष्ठ हिन्दी है, केवल उतनी ही जितनी कि एक काल विशेष की पृष्ठभूमि में रखने के कारण अपेक्षित यथार्थ भ्रम की सृष्टि के लिए आवश्यक है।''[7]

मोहन राकेश अपने नाटकों में कम से कम शब्दों द्वारा गहरी अर्थ अभिव्यक्ति को उजागर करना। उनके भाषा और संवाद विशेषता है आधे-अधूरे नाटक में कुछ शब्दों का प्रयोग विशिष्ट अर्थ अभिव्यक्ति के लिए किया गया है :

''स्त्री : यहां बैठे! सच-सच बता, तुझे वहाँ किसी चीज़ की शिकायत है?
बड़ी लड़की : शिकायत किसी चीज़ की नहीं.....।
स्त्री : तो
बड़ी लड़की : और हर चीज़ की है।
स्त्री : फिर कोई खास बात?
बड़ी लड़की : खास बात तो कोई भी नहीं.....।
स्त्री : तो
बड़ी लड़की : और सभी बातें खास है।
स्त्री : जैसे
बड़ी लड़की : जैसे सभी बातें।''[8]

उपर्युक्त उद्धरण में कम से कम शब्दों में पात्रों के अन्तर्मन को उघाड़ने का प्रयास किया गया है।

मोहन राकेश अपने नाटकों में शब्दों की विविध अर्थ-छवियों को उद्घाटित किये हैं। जिससे अर्थ के अनेक पहलू झलकते है। 'आषाढ़ का एक दिन' में मेघ, वर्षा, भीगना, अंधेरा, भावना, अतिथि, सम्पत्ति भूमि आदि। 'लहरों के राजहंस' में अंधेरा छाया, दर्पण, नन्द के शब्द, श्यामांग के शब्द आदि। 'आधे-अधूरे' में कोई, कैसे, हवा, गर्द, घर, खड़ा होना आदि शब्दों को लेकर संवादों को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया गया है :

''कालिदास ; मैं अनुभव करता हूँ कि ग्राम प्रान्तर मेरी वास्तविक भूमि है। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। यहाँ से आकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊँगा।

मल्लिका; यह क्यों नहीं सोचते कि नई भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक सम्पन्न और उर्वर मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नई भूमि की आवश्यकता है जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना देगी।

कालिदास; नई भूमि सुखा भी तो सकती है।
मल्लिका; कोई भूमि ऐसी नहीं होती जिसके अन्तर में कोमलता न हो।''[9]

''*स्त्री;* अभी कोई आने वाला है बाहर से और.....।
बड़ी लड़की; कौन आने वाला है?
पुरुष एक; सिंघानिया इसका बाँस। वह नया शुरु हुआ है आजकल।
स्त्री; खड़े, क्यों हो गए?
पुरुष एक; क्यों मैं खड़ा नहीं हो सकता?
स्त्री; (हलका वकफा लेकर तिरस्कार पूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अन्दर ही।''[10]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि एक ही शब्द (भूमि) तन्तु द्वारा कालिदास के द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। आधे-अधूरे में 'खड़ा होना' शब्द के द्वारा सावित्री का महेन्द्रनाथ के प्रति वितृष्णा के भाव को उजागर किया गया है।

राकेश के संवाद सीधे और सपाट नहीं है। जब पात्रों के मन में कोई विशेष मनः स्थिति आ जाती है तो वह अतिशय और सांकेतिकता को प्राप्त कर लेती है। तब शब्द संकेत में बदल जाती है और वाक्य विन्यास भी कहीं सघन और कहीं खण्डित हो जाते हैं। जब पात्र विकृति और तनाव को झेलते है तो तब उनके शब्द एक-दूसरे से उलझ जाते है। कोई कुछ कहता है उत्तर कुछ मिलता है। फिर बेतुकी बातें शुरु हो जाती है- टोका-टोकी, सुनी-अनसुनी करना, टूटे-फूटे संवाद और चुप्पी जो समस्त विसंगति में अर्थ की संगति बिठाती है। कुछ संवाद तो शुरु होने से पहले ही खत्म हो जाते है; और कुछ पात्र स्वयं ही बात को अनकहा छोड़ देते हैं :

''*सुन्दरी;* क्या सोच रहे हैं?
नन्द; (अव्यवस्थित)....नहीं सोच कुछ नहीं रहा।
सुन्दरी; (कटोरी उसकी ओर बढ़ाकर) मेरे माथे पर विशेषक नहीं बनाएँगे?
नन्द; (अपने में खोया-सा) विशेषक! अ.....हाँ (हाथ आगे बढ़ाकर) लाओ दो मुझे।
सुन्दरी; नहीं इस मन से नहीं। पहले बताएँ क्या सोच रहे हैं?
नन्द; सोच रहा था कि.....।''[11]

राकेश ने उर्पुक्त उद्धरण में नन्द के खण्डित व्यक्तित्व, अन्तर्मन के द्वन्द्व एवम् दुराव का चित्रित किया है।

मोहन राकेश भाषा में 'मौन' को अधिक महत्व देते हैं। यह मौन उनके नाटकों में अत्यधिक मुखर हुआ है। राकेश के अनुसार, ''शब्दों की यात्रा में बहुत बार बहुत कुछ अनकहे शब्दों द्वारा कहा जाता है। ये अनकहे शब्द बिम्ब के साथ यात्रा करते हुए मौन अपने सम्प्रेषण में शब्दों और क्रियाओं से कम प्रभावशाली नहीं होता। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में जब मल्लिका वर्षा में भींगने के अनुभव का बखान अपनी माँ (अम्बिका) से करती है तो अम्बिका उसकी बातों का जवाब नहीं देती है या देती है तो बहुत थोड़े शब्दों में :

''*मल्लिका;* क्या बात है मां?
अम्बिका; देख रही हो मैं काम कर रही हूँ
मल्लिका; काम तो तुम हर समय करती रहती हो। परन्तु हर समय इस तरह चुप नहीं रहती। (अम्बिका के पास आ बैठती है। अम्बिका चुपचाप धान फटकती रहती है। मल्लिका उसके हाथ से छाज ले लेती है।) मैं तुम्हें काम नहीं करने दूँगी।.....मुझसे बात करो।''[13]

यहाँ 'मौन' का प्रयोग 'तटस्थता' दिखाने के लिए किया गया है। तटस्थता के अतिरिक्त तनाव, द्वन्द्व आक्रोश आदि की अभिव्यक्ति मौन द्वारा की गयी है।

राकेश के संवाद लय की दृष्टि से भी अधिक सक्षम है। शब्दों और वाक्यों का लय, एक संवाद और दूसरे संवाद का परस्पर संघात, पात्रों के बोलने का लहजा, वाक्य विन्यास, शब्द क्रम मिलकर अद्‌भुत वाग्प्रवाह पैदा करते हैं :

''*कालिदास;* कहो आजकल किस नए छन्द का अभ्यास कर रहे हो?
विलोम; छन्दों का अभ्यास मेरी वृत्ति नहीं है।
कालिदास; मैं जानता हूँ तुम्हारी वृत्ति दूसरी है। उस वृत्ति ने सम्भवतः छन्दों का अभ्यास सर्वथा छुड़ा दिया है।
विलोम; आज निःसन्देह तुम छन्दों के अभ्यास पर गर्व कर सकते हो।''[14]

'आधे-अधूरे' में लयात्मकता का प्रयोग कर भाषा की सहजता को दिखाया गया है :

''बड़ी लड़की; तो तू सोचता है कि ममा जो कुछ भी करती है यहाँ.....?
लड़का; मैं पूछता हूँ, क्यों करती है? किसके लिए करती हैं.....?
बड़ी लड़की; मेरे लिए करती थी.....।
लड़का; तू घर छोड़कर चली गयी।
बड़ी लड़की; किन्नी के लिए करती है.....।
लड़का; वह दिन ब दिन बदतमीज होती जा रही है।
बड़ी लड़की; डैडी के लिए करती है।
लड़का; उनकी हालत देखकर रहम नहीं आता?
बड़ी लड़की; और सबसे ज्यादा तेरे लिए करती है।
लड़का; और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज्यादा नकारा हूँ.....''[15]

राकेश ने अपने नाटकों में उत्सुकता और नाटकीय तनाव बनाए रखने के लिए अधूरे वाक्यों का सायास प्रयोग किया है जो संरचना की दृष्टि से अधूरे है लेकिन अर्थवत्ता की दृष्टि से सम्पूर्ण है :

विलोम; निःसंदेह! तुम्हें ऐसा मोह क्यों होगा? साधारण व्यक्ति को हो सकता है, तुम्हें क्यों होगा? परन्तु मैं केवल इतना जानना चाहता था कि यदि ऐसा हो-क्षण भर के लिए स्वीकार कर लिया जाए कि तुम जाने का निश्चय कर लो तो उस स्थिति में क्या यह उचित नहीं कि.....।''[16]

अधूरे किन्तु पूर्ण वाक्यों के साथ राकेश ने विराम, विस्मय-बोधक चिन्ह, प्रश्नवाचक चिन्ह एवम् शब्दों तथा वाक्यों के बीच अन्तराल का सयत्न प्रयोग किया है जो नाटकीय सौन्दर्य को बढ़ाता है। यहीं नहीं शब्दों के माध्यम से अनेक स्थानों पर उन्होंने आगामी घटनाओं और पूर्व कथनों का संकेत भी कुशलतापूर्वक किया है। जैसे-

स्त्री; बीना आई है बाहर
पुरुष एक; फिर उसी तरह आई होगी।''[17]

राकेश ने अपने नाटकों में ध्वनि का सम्भावनापूर्ण प्रयोग किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में नाटक के आरम्भ में हल्के-हल्के मेघ गर्जन और वर्षा के शब्द और इसके पश्चात घोड़ों की टापों की ध्वनि नाटक में तनाव को गहराता है। द्वितीय अंक में घोड़ों की टापों का पास आता शब्द संघर्ष तनाव के साथ-साथ उत्तेजना की वृद्धि करता है। तृतीय अंक में वर्षा और मेघ गर्जन के शब्द मल्लिका के जीवन के सूनेपन को और अधिक भयावह बनाते हैं। 'लहरों के राजहंस' नाटक में पानी में पत्थर फेंकने की ध्वनि, पंखों की फड़फड़ाहट, हंसों का आहत क्रन्दन, बीच-बीच में तेज हवा का शब्द, कबूतरों का स्वर, खुटक-बढ़ैया का लकड़ी पर चोंच मारने के द्वारा संशयग्रस्त और द्वन्द्वग्रस्त मनोदशा को उभारा गया है। बौद्ध भिक्षुओं का स्वर भी विशेष प्रभाव छोड़ता है। 'आधे-अधूरे' सार्थक ध्वनियों का प्रयोग किया गया है। जैसे- किटपिट, ओफ्होह-ओफ्होह, थू-थू-थू, ओह-ओह, हुँ-हुँ-हुँ, चख-चख-चख आदि। इन ध्वनियों के माध्यम से वितृष्णा, तनाव, आक्रोश, थकान, उतारने का भाव, उदासीनता आदि को प्रकट किया गया है।

शब्द, ध्वनियों को देने के साथ-साथ मोहन राकेश बिम्ब को अस्वीकार नहीं करते हैं। उनका मानना है कि रंगमंच में दृश्य की आपेक्षिक स्थिरता के बावजूद जो एक आन्तरिक गति रहती है। वह शब्दों तथा ध्वनियों के निरन्तरता से उपजती है क्योंकि नाटक में जो देखा जाता है, सुना जाता है उसी का रुपान्तर है। शब्दों का कार्य केवल बिम्ब को जन्म देना ही नहीं? बल्कि उससे जुड़े रहना भी है। नाटकों में बिम्ब-विधान चरित्रों और परिस्थितियों के साथ लगातार बदलते हुए नए अर्थ-सौन्दर्य को उद्घाटित करता है। 'आषाढ़ का दिन' में मल्लिका के ये शब्द सजीव बिम्ब को प्रस्तुत करते हैं :

''मल्लिका; आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ!..... ऐसी धारासार वर्षा। दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भींग गयी। गयी थी कि दक्षिण से उड़कर आती बकुल पंक्तियों को देखूंगी, चारों ओर धुंधारे मेघ घिर आए थे.....फिर भी घाटी की पगडण्डी पर नीचे-नीचे उतरते चली गयी।''[18]

'लहरों के राजहंस' की रचना के मूल में ही दीपाधार एवम् पुरुष तथा नारी मूर्ति का बिम्ब था। स्वयं रचनाकार के शब्दों में, ''बहुत कैसे एक बिम्ब मन में था। दो दीपाधार। एक ऊँचा शिखर पर पुरुष-मूर्ति-बाँहें फैली हुई तथा आँखें आकाश

की ओर झुकी हुई पहले-पहले शायद अश्वघोष को 'सौन्दरनंद' पढ़ते हुए यह बिम्ब मन में बनने लगा था। क्यों और कैसे, यह कह सकना असम्भव है। यह काव्य का अपना बिम्ब तरंगों पर तैरते राजहंस का है, या अनिश्चय में उठे-रुके एक पैर का। परन्तु मेरे लिए वह सब कुछ धुंधला दृश्य था। स्पष्ट थे दो दीपाधार जो 'सौन्दरनन्द' में नहीं थे।''[19]

इस प्रकार मोहन राकेश की भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन मात्र नहीं बल्कि समय, जीवन और दृष्टि बदलने के साथ-साथ भाषा, उसकी लय भी अपने आप बदलती जाती है। जिस तरह भावना, विचार और स्थितियाँ अनुभव को निर्मित करने वाले तत्व है उसी तरह भाषा भी है।

सन्दर्भ

[1]राकेश, मोहन -बकलम खुद, पृष्ठ संख्या 73-74

[2]राकेश, मोहन -साहित्य और संस्कृति दृष्टि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 80, आवृत्ति : 1990

[3]वही, पृष्ठ संख्या 162

[4]राकेश, मोहन -आधे-अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 54, आवृत्ति : 2007

[5]राकेश, मोहन -आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 10, संस्करण : 2011

[6]राकेश, मोहन -लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 60-61 आवृत्ति : 2007

[7]रस्तोगी, गिरीश -आधुनिक हिन्दी और रंगमंच (मोहन राकेश और उनके नाटक) अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 146 प्रथम संस्करण : 1992

[8]राकेश, मोहन -आधे-अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 25-26, आवृत्ति : 2007

[9]राकेश, मोहन -आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 46-47, संस्करण : 2011

[10]राकेश, मोहन -आधे-अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 18, आवृत्ति : 2007

[11]राकेश, मोहन -लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 101, आवृत्ति : 2007

[12]राकेश, मोहन -साहित्य और संस्कृति दृष्टि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 92, आवृत्ति : 1990

[13]राकेश, मोहन -आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 11, संस्करण : 2011

[14]वही, पृष्ठ संख्या 39

[15]राकेश, मोहन -आधे-अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 55, आवृत्ति : 2007

[16]राकेश, मोहन -आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 43, संस्करण : 2011

[17]राकेश, मोहन -आधे-अधूरे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 21, आवृत्ति : 2007

[18]राकेश, मोहन -आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 8-9, संस्करण : 2011

[19]*लहरों के राजहंस,* तीसरे संस्करण की भूमिका (नेमिचन्द्र जैन द्वारा सम्पादित) मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक, पृष्ठ संख्या 199

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,73-77
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 दिसम्बर 2015

समकालीन परिवेश एवं कबीर

डॉ. विभा मेहरोत्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *समकालीन परिवेश एवं कबीर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा मेहरोत्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी भी विचारक की लेखनी तत्कालीन परिवेश का दर्पण होती है जैसे नीर वातावरण प्रभाव से रंग तो बदलता है किन्तु अपना स्वरूप नहीं बदलता है वैसे ही लेखक की विषयवस्तु नवीनता को ग्राह्य करते हुए भी अतीत का दामन नहीं छोड़ती है।

कबीर अपने समय के वैष्णव, सूफी तथा नाथ सम्प्रदायों से प्रभावित हुए थे, परन्तु उन्होंने जिस श्रद्धा से आचार-प्रधान वैष्णव सम्प्रदाय का स्मरण किया है, उस श्रद्धा से अन्य सम्प्रदायों का नहीं। वे हिन्दू और मुसलमान दानों को फटकारते थे। मुसलमानों की धर्मान्धता, मूर्खता और क्रूरता उन्हें बुरी तरह खजती थी, साथ ही हिन्दुओं के मिथ्याभिमान कर्म-काण्ड के जगड्वाल तथा कथनी-करनी की विषमता से भी उन्हें घृणा थी। आचार को वे सर्वोपरि स्थान देते थे। शाक्त अपने दुराचार के लिए उन दिनों कुख्यात थे। कबीर ने इनकी बार-बार निंदा की है, पर यह भी लिखा है कि यदि शाक्त सदाचारी हैं, तो वह दुराचारी वैष्णव की अपेक्षा अच्छा है।

कबीर की रचनाओं में प्रेम की गहरी पीर विद्यमान है। उनकी आत्मा प्रभू के वियोग में तड़पती है। वे प्रेम को अकथनीय मानते हैं। भागवत भक्ति के उन्नायकों के नाम उन्होंने अनेक बार लिए हैं। नारदी भक्ति का भी उन्होंने निष्ठापूर्वक उल्लेख किया है और लिखा है कि जिसके हृदय में यह भक्ति स्थिर न हो सकी वह प्रभू से क्या प्राप्त कर सकता है। हरिभक्ति का सन्देश वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को देते थे। पुनर्जन्म में उनकी अटल आस्था थी तथा कथनी और करनी की एकता को वे मानव-उन्नति का सफल सोपान समझते थे।

कबीर के अभ्युदय के पूर्व भारत में अनेक धर्म साधनाओं की परम्परा प्रचलित थी। सबसे अधिक प्रभाव नाथपंथी योगियों का था। यह प्रभाव दक्षिण से उमड़कर उत्तर भारत के भक्ति-प्रभाव को प्रभावित कर चुका है। कट्टर एवं एक ईश्वरवादी इस्लाम निम्नवर्गीय जनता को राजनैतिक और सामाजिक कारणों से प्रभावित कर रहा था। सूफीवादी साधक अपनी उदारता और

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. महाविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सात्विकता के कारणों से भारतीय जन-समाज को अपने निकट लाने में लगे थे और सूफी साधन जन-मानस को एकेश्वरीय वाद का मार्ग दर्शन दे रहे थे। शैव और शाक्त मतों का प्रचार भी था परन्तु उनकी गतिमयता धीरे-धीरे समाप्त हो चुकी थी। विशेषतः शक्ति के उपासक शाक्त-साधना तांत्रिक पद्धति को स्वीकार गुह्य और एकांगी हो गये थे। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार से तपस्वी, साधक अपने-अपने रंग में मस्त विविध प्रकार की साधनाओं में लीन थे। कबीर विलक्षण प्रतिभा लेकर उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने समय में प्रचलित धर्म-साधनाओं के पक्ष में आने वाली दुर्बलताओं को लक्षित किया और अपने अनुभव को प्रमाण मान कर धर्म-साधना क्षेत्र के क्रान्ति पैदा की। उन्होंने सबसे अधिक महत्व योगियों और नाथ पंथियों को दिया। वैष्णव शक्ति साधक को भी कबीर ने स्वीकार किया। किन्तु इन्हें भी पूर्णतः स्वीकार न कर सके और परमत्व के स्वरूप उसकी प्राप्ति के साधन, मानव जीवन की सार्थकता एवं साधनाओं से अलग कबीर का लक्ष्य परम परमेश्वर की साधना था। इन सभी धर्म साधकों के बीच आत्मा का मिलन परमात्मा से कराने का उपदेश दिया। हिन्दू धर्म में उस समय शैव, शाक्त, वैष्णव और तांत्रिक आदि अनेक सम्प्रदाय प्रचलित थे। बौद्ध धर्म की विकृत परम्परा सहजयान तथा वर्जयान का विकसित रूप सिद्ध सम्प्रदाय तथा नाथ सम्प्रदाय में दृष्टिगत हुआ जिसके यौगिक साधना षटचक्र भेदन, कुण्डलिनी उत्थापन प्रक्रिया का प्राधान्य था। ब्राह्मणों के निर्देशन में पौराणिक धर्म पाखण्डों, मूर्तिपूजा, वाह्याडम्बरों, अंधविश्वासों, जप-तप पशु बलि आदि में रूढ़ हो जा रहा था। कबीर ने इन सभी आडम्बरों का विरोध कर निर्गूण साधना का चिंतन परम्परागत चिन्तन समाज में दृष्टिगोचर किया।

उपनिषद् काल में केवल पूजा की जाती थी। इस पूजा में उपासना की भावना नहीं थी क्योंकि उपासना किसी स्वरूप की की जाती है। उपासना की यह भावना पूजा की भावना से अधिक व्यापक और परिष्कृत थी। धार्मिक अन्धविश्वासों के आघात के कारण हिन्दू-समासज विखण्डित हो रहा था। देश में एक लम्बे समय तक हिन्दू धर्म को हर प्रकार की उपेक्षा मिलती रही परन्तु यह हिन्दू धर्म की शक्ति थी जो इसे इन विषम परिस्थितियों में भी अपने को जीवित रखे हुए थी। कबीर के आविर्भाव के समय तक बौद्ध धर्म भारत में प्रायः विलुप्त हो चुका था। किन्तु इस धर्म के आन्तरिक विकारों के कारण समाज में जिन कमियों का बीजारोपण हुआ वे भी देश की संस्कृति के मूल स्वरूप को बहुत क्षति पहुंचा रही है।

कबीर के समय बहुत से सम्प्रदाय अस्तित्व में थे। निरंजन सम्प्रदाय बाद में कबीर पंथ में अन्तर्लीन हो गया और उसकी सारी कथायें कबीर मत में संग्रहित हो गई। कबीर ने शाक्त-सम्प्रदाय को भी फटकारा परन्तु उनकी अच्छी बातों को महत्व दिया। वैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति साधना भारतीय जन-मानस में अपना स्थान बनाये रखे थी।

इन सभी सम्प्रदायों का मत कहीं न कहीं एक दूसरे से मिलता था परन्तु इस्लाम की भांति आक्रामक नहीं था। सूफी सन्त भारतीयता के आवरण में अपने विचारों को जोड़ना चाहते थे लेकिन उन्हें पूर्णतया सफलता नहीं मिली थी।

कबीर युग में भारतीय समाज में चिन्तन एवं साधना के तमाम पद्धतियों का अस्तित्व मिलता है। कबीर कालीन समाज में दो पथ मिलते हैं एक पथ भारतीयता पर आधारित धर्म साधना था और दूसरा पथ अभारतीय परम्परा पर आधारित धर्म साधना का था। देश में विरोध और सांस्कृतिक विद्वेष के मूल में इन्हीं दोनों पक्षों का विरोध था। हिन्दुओं में व्याप्त बहुदेववाद, 'मूर्ति-पूजा पुजारियों की संकीर्णता, बाह्याचार, माला-तिलक आदि के सहारे टिके हुए पाखण्डियों द्वारा समाज का शोषण, श्रद्धा और विश्वास के स्थान पर अन्धभक्ति, सत्यान्वेशी तांत्रिक सिद्धों की साधना में पापाचार की भरमार, वैदिक कर्म काण्ड बौद्ध और जैन में गिरती हुई साख तथा सूफियों और इस्लाम के प्रभाव के कारण अपनी मूल संस्कृति प्रभावित हो रही थी। उपर्युक्त सभी बिन्दुओं का कबीर ने चिन्तन किया और अपने काव्य में समाज को एक ऐसे पूर्ण समाज के रूप में व्यक्त किया जो अपने अस्तित्व को पहचाने और समाज में अपनी एक छवि बनाये। सामाजिक बुराइयों को रोकने के लिए एकेश्वरवाद का समाज को दर्पण दिखा कर कबीर ने समाज को पाखण्डियों से बचाकर एक नई दिशा दिखाई। प्रचलित आडम्बरों का खण्डन करते हुए कबीर समरस समाज की बात गृहस्थ धर्म के अनुपालन में जहाँ साथ-साथ करते हैं वहाँ दूसरी ओर यह भी कहते हैं, 'कबीर बैस्नो भया तो का भया, बूझया नहीं वमेक।।'[2]

स्पष्ट है कि कबीर को वही वैष्णव प्रिय था जो विवेकयुक्त हो और जिसकी राम नाम से अविचल निष्ठा हो। छापा तिलक बनाकर संसार को ठगने वाले वैष्णव से वे दूर ही रहते थे।

सूफी मत का प्रादुर्भाव इस्लामी कट्टरपंथ की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था किन्तु इसका उद्गम स्रोत इस्लाम के समान कुरान से ही है। ईसा की सातवीं शताब्दी में सूफी मत का बीज उस समय अंकुरित हो रहा था जब मुस्लिम जगत में इसाई प्रभाव से सन्यास जीवन के लिए एक महान क्रान्ति हो रही थी। आचार्य राहुल सांकृत्यायन का कथन है- 'अरब से निकला इस्लाम भक्ति प्रधान धर्म था। इसाई और यहूदी धर्म भी भक्ति प्रधान थे। यूनानी दर्शन तर्क-प्रधान था। केवल भक्ति प्रधान धर्म बुद्धि को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। समाज को स्थिरता प्रदान करने के लिए श्रद्धालुओं की जरूरत होती थी। श्रद्धालुओं की श्रद्धा को नकार कर बिना नकेल के ऊँट की भांति स्वच्छन्दता मांगने वाली बुद्धि को फंसाना जरूरी था। इन्हीं ख्यालों को लेकर यूनानियों ने पीछे भारतीय रहस्यवाद में मिश्रित नव अफलातूनी दर्शन की बुनियाद रखी थी। जब इस्लाम के ऊपर भी यही संकट आया तो उन्होंने भी तैयार हथियार को इस्तेमाल किया। ईसाई साधक तथा हिन्दू बौद्ध योगी साधक उस वक्त तक भी मौजूद थे, इस्लामी विचारक यह भी देख रहे थे कि यह योगी साधक कितनी सफलता के साथ भक्तों और दार्शनिकों के श्रद्धाभाजन है। इसलिए इस लाभ ने भी सूफी वाद के नाम से गृहस्थ त्यागी फकीरी की एक जमात तैयार की।[3]

सूफी मत इस्लाम का एक धार्मिक तत्वज्ञान ही है। मोहम्मद साहब की मूर्ति-विरोध ने ईश्वर को निर्गुण और ध्यान का विषय बना दिया। ईश्वर परम लावण्यमय है।[4] इस विचार ने साक्षात्कार की भावना जागृत की और अल्लाह के आदर्श पुरुष के प्रति प्रेम तथा सांसारिक रति ने दैवी रति भाव की उत्तेजना दे ईश्वर को अपने प्रियतम का रूप दे दिया।

सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ, ऊन-सफा सफ्फे अव्वल आदि शब्दों से मानी जाती है। ईसा की आठवीं-नवीं शताब्दी के आस-पास इस्लामी संसार त्यागी साधन उनका प्रयोग करते थे; इसलिए उन्हें सूफी कहा गया। जो विद्वान इस शब्द की व्युत्पत्ति सफा से मानते हैं उनका कहना है कि नियत साधक पवित्र एवं सात्विक जीवन व्यतीत करते थे। पाकीजा मिजाज थे, स्वच्छात्मा थे, इसलिए उन्हें सूफी कहा गया ये सूफी ब्रह्मज्ञानी थे, आध्यात्मवादी थे, सब धर्मो से प्रेम करने वाले थे, तसब्वुफ (सूफियों के दर्शन) के अनुयायी थे। इस्लाम धर्म के अन्तर्गत सूफी रहस्यवाद के साधक माने जाते हैं। हिन्दी में सूफी आख्यानक काव्य को ही प्रेमाख्यानक काव्य कहते हैं क्योंकि इन कवियों ने तसब्वुफ के अनुसार प्रेम की पीर को ही अपनी साधना का मूल मंत्र माना। उन्होंने अपने कल्पित या इतिहास मिश्रित अर्द्ध कल्पित आख्यानों में हृदय का प्रेम (इश्क) ही व्यक्त किया है। सूफियों की साधना का आदि अन्त यह अलौलिक प्रेम है। सभी प्रकार की कठिनाइयों और विघ्न-बाधायें सहन करते हुए सूफी कवियों ने अधिकतर ईरानी मसनवी शैली और भारतीय परम्पराओं का समन्वय उपस्थित किया है।[5]

सूफी मत के अनुसार केवल ईश्वर ही वास्तविक है और कुछ भी नहीं अतः वही सर्वत्र और सर्वरूप है। नूर मोहम्मद ने कहा कि ईश्वर को किसी ने नहीं उत्पन्न किया, न कोई उसके समान है। वह समान रूप से व्याप्त है। दूसरी कुछ भी नहीं समुद्र की लहरें समुद्र में से उठती हों पर वे उससे भिन्न नहीं है और यह जगत भी उससे भिन्न नहीं, 'सिर्जनहार एक है काहू जना न सोई। आप काहू सौंपना, वह समान नहीं कोई।।'

सूफी मत के अनुसार मनुष्य के अन्दर चार चीजें पायी जाती हैं। नफ्स, रूह, हृदय, अक्ल। नफ्स या इन्द्रिय दमन का सार्थक प्रयास होना चाहिए क्योंकि बिना इन्द्रियों के नियंत्रण के कोई भी साधना सार्थक नहीं होगी। इसके बाद आत्मा या रूह की शुद्धि जो हृदय के अच्छे बुरे की ओर आकर्षित करती है। इन सबके ऊपर अकल (बुद्धि) का हृदय से सोचने और साधना में सार्थक कराने को अकल का कार्य है जिससे प्रतिबिम्ब हृदय पर पड़ता है। दाराशिकोह ने रिसाला-ऐ-हक-नुमा में चार जगत् माने हैं। उसके विवरण से ज्ञात होता है कि सूफियों के अनुसार ज्ञान है आत्मा। जिस पर विविध ज्ञान या भाव अंकित होते हैं। वह है कल्प या हृदय सूफियों के अनुसार संत चरम परमार्थिक सत्ता है।''[6]

नफ्स के साथ जिहाद विरतिपथ है। जिव्र और मुराकवत नवधा भक्ति पथ कल्प (हृदय) को भी सूफियों ने आत्मा के समान अलौकिक माना है। समीम से असीम की जिस साक्षात्कार जन्य मिलन की उत्कंठा सूफी साधकों के मन में उठती है। इसके लिए आध्यात्मिक ज्ञान से चार उपादानों का संकेत दिया है। शरीयत, तकीकत, मारफत, सीअत। जायसी के ग्रन्थ अखरावट में इन चारों अवस्थाओं का क्रमशः उल्लेख है, 'कहीं सरीयत, चिस्ती पीरु/ आधारित असरफ और जहगीरु/ राह 'हकीकत' पेरे न चुकी। पैठि मारफत मार बूडूकी/ साची रहा 'सीअत' जोहि विसवाल न होई। पाव रखै तेहि सीढ़ी निभरम पहंचै सोई।।'

ज्ञान उद्‌बोधन की प्रथम अवस्था जिसे शरीयत कहते हैं। उसमें मुख्य भाव विस्मय मूलक जिज्ञासा है। यानि मनुष्य ईश्वर के अप्रितम एवं अलौकित सौन्दर्य को देखकर उसी प्रकार है जैसे कोई बालक अलौकिक जगत् की वस्तुयें देखकर विस्मित हो जाता है।

सूफी मत या इस्लाम धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष का कोई विशेष प्रभाव तो कबीर पर दृष्टि-गोचर नहीं होता। परन्तु कहीं-कहीं उसके एकेश्वरवाद और नूर की झलक अवश्य मिलती है। सृष्टि का नियन्ता ईश एक ही है।[8] उसी के नूर से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। 'अव्वल अल्लाह नूर उपाया कुदरत के सब बन्दे। एक नूर ते सब जग उपज्या कोन भले के मन्दे।'[9]

सूफी मत का प्रभाव कबीर पर प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। कबीर का प्रेम तत्व उससे प्रभावित है। कबीर भी प्रेम को मदिरा का रूप देते है। उसके मार्ग को कठिनाई और बलिदान का मार्ग मानते हैं।

'कबीर माठी कलाल की बहुतक बैठे आई। सीस सौषे सोई नहीं तो पिया न जाई।।'[10] कबीर की तीव्र विरह-व्यंजना भी सूफी प्रभाव की झलक दिखा रही है, 'रात्यूं रूंनी विरहनी, ज्यू बचौं कूं कुंज। कबीर अन्तर प्रजल्य, प्रगटया विरह पुंज।।'[11]

आचार्य शुक्ल ने तो यहाँ तक कहा कि कबीर का भावात्मक रहस्य वाद सूफियों के सत्संग का ही प्रसाद है।[12] कबीर पर तत्युगीन विविध धर्म सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है। इस क्षेत्र में कबीर की तत्वान्वेषी प्रतिभा ने अपनी रुचि के अनुकूल सार तत्व ग्रहण करके उसे मौलिक रूप में व्यक्त किया। प्रतिक्रिया रूप में कबीर ने सभी धर्मो के बाह्य कर्म काण्डों की निन्दा की और अन्तस्थ ईश्वर की उपासना का निर्देश दिया। सभी धर्म-साधनायें कबीर की वाणी में आकर इस प्रकार घुलमिल गई कि उनका पृथक अस्तित्व दृष्टिगोचर नही होता और सभी विशिष्टतायें कबीर की मौलिक बन जाती है। डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा ने एक रूपक देते हुए लिखा जिस प्रकार अनेक नदी नालों का जल गंगा से मिलकर गंगोदक हो जाता है। उसी प्रकार अनेक भाव एवं विचारधारायें कबीर की वाणी में संग्रहीत हो गई है।[13] इन सबसे मिलकर कबीर का काव्य अपनी मौलिक विशेषताओं सहित हमारे समक्ष आता है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह कहा जा सकता है कि कबीर काव्य की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोतों के उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि कबीर को तत्‌युगीन परिस्थितियों से अपने काव्य सृजन के लिये सशक्त प्रेरणा प्राप्त हुई। व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्विरोधों ने उनके विद्रोही व्यक्तित्व को जन्म दिया या विभिन्न धर्म साधनाओं ने उसके काव्य के आध्यात्मिक, भावनात्मक तथा अभिव्यक्ति पथ को प्रभावित किया।

निष्कर्षतः कबीर की स्वतन्त्र प्रतिभा 'सत' का तो समादर करती थी परन्तु असत् के साथ समझौता उसने कभी नही किया। न तो वे मुसलमानों की धर्मान्धता, स्वार्थपरायणता मूर्खता और क्रूरता को ही पसन्द करते थे और ना ही हिन्दुओं के मिथ्या अहंकार तथा वर्ण-वैषभ्य का ही समर्थन करते थे। 'कथनी' और 'करनी' में जहाँ उन्हें विरोध दिखाई दिया वहीं उन्होंने उसका तिरस्कार किया। उनकी भक्ति-आडम्बर विहीन तथा सदाचार-पूर्ण जीवन की संगिनी रही है। कबीर ने सत्य, मानवतावाद और जिस समभाव की स्थापना करनी चाही - वर्तमान समय में उसकी अधिक आवश्यकता है। कबीर जैसी समाज सुधार की भावना व दृढ़ इच्छा शक्ति और काम करने से ही हम समाज में शान्ति बहाल कर पायेंगे।[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]*कबीर सम्पाद* -वासुदेव सिंह, पृष्ठ संख्या 26

[2]*कबीर ग्र0* -डॉ0 माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ संख्या 78

[3]*कबीर दर्शन* -डॉ0 रामजी लाल सहायक, पृष्ठ संख्या 90

[4]राहुल सांकृत्यायन -*दर्शन दिग्दर्शन,* पृष्ठ संख्या 101

[5]*हिन्दी साहित्य का इतिहास* -लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ संख्या 119-120

[6]*सत्य साहित्य का दार्शनिक* -रेणुका सिंह, पृष्ठ संख्या 71

[7]*सन्त साहित्य का दार्शनिक अध्यापन* -रेणुका सिंह, पृष्ठ संख्या 71-72

[8]*कबीर ग्र0,* पृष्ठ संख्या 82; पद संख्या 52

[9]*कबीर ग्र0,* पृष्ठ संख्या 273

[10]*कबीर ग्र0,* पृष्ठ संख्या 13 (रस को अंग)
[11]*कबीर ग्र0,* पृष्ठ संख्या (रस को अंग)
[12]*हिन्दी साहित्य का इतिहास* –आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या 81
[13]*कबीर–व्यक्तित्व एवं कृतित्व एवं सिद्धान्त* –डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा, पृष्ठ संख्या 200
[14]*मध्यकालीन काव्य में जीवन मूल्य और समकालीन परिवेश* –डॉ0 रीता श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 58

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,78-81
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 दिसम्बर 2015

नागार्जुन के काव्य की जनपक्षधरता और समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. निशा यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नागार्जुन के काव्य की जनपक्षधरता और समकालीन प्रासंगिकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *निशा यादव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नागार्जुन हिन्दी कविता के प्रगतिवादी युग के प्रखरतम कवि के रूप में जाने जाते हैं। बाबा नागार्जुन के काव्य में जनसंघर्ष के प्रति अडिग आस्था, जन के मन से लगाव और न्याय आधारित समाज का सपना रचा-बसा है। बाबा नागार्जुन के काव्य में आम आदमी का दर्द साफ दिखाई देता है। वे हिन्दी कविता धारा के उन प्रमुख स्तंभों में हैं जिन्होंने न सिर्फ कविता को रचा बल्कि उसे जिया भी। अपनी कविता रवि-ठाकुर में वे खुद कहते हैं, 'पैदा हुआ मैं ! दीन-हीन अपठित किसी कृषक कुल में। आ रहा हूँ पीता !अभाव का आसव ठेठ बचपन से।'

पराधीनता से स्वाधीनता और फिर उदारीकरण की यात्रा के हर चरण में बाबा नागार्जुन का काव्य प्रासंगिक बना हुआ है। जनकवि नागार्जुन की कविताओं में किसान, मजदूर, महिला और आम आदमी का जो दर्द छलकता दिखा उसके निशान आज भी समाज में साफ तौर पर दिखलाई देते हैं। बाबा नागार्जुन की कविता का किसान आज भी बुंदेलखंड से लेकर विदर्भ तक सूखे और गरीबी की मार से दम तोड़ता दिख रहा है। विकास और उदारीकरण की चमक-दमक के बावजूद अमीर-गरीब की खाही कहीं ज्यादा गहराती गयी है।

बदलते दौर में नागार्जुन का काव्य पहले से अधिक प्रासंगिक नजर आता हैं। दरअसल, हिन्दी काव्य में बाबा का प्रवेश एक ऐसे क्रांतिकारी कवि के रूप में होता है जो सच्चे अर्थ में सर्वहारा वर्ग की नुमाइंदगी करता है। दरअसल, नागार्जुन की काव्य धारा जनसामान्य से निकलकर आती है और जन की भाषा में जन तक पहुँचती हैं।

बाबा नागार्जुन के काव्य में जनमानस की वेदना इसलिये भी प्रस्फुटित होती है क्योंकि वे कोरे कवि ही नहीं थे, जनांदोलनों में हिस्सा लेकर की गयी जेल यात्राएँ भी उनकी लेखनी को जरूरी जन तत्व प्रदान करती थी। नागार्जुन ने बिहार के किसान आंदोलन में सक्रिय भागीदारी करते हुए तीन बार जेल यात्रा की थी और आपातकाल में भी जेल का जीवन जिया।

* असिस्टेंट प्रोफेसर (आमंत्रित), कन्या गुरुकुल कॉलेज देहरादून कैम्पस [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर तात्कालिक सियासी, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों की मुख्य भूमिका रही। इन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया पग-पग पर उनके साहित्य में विद्यमान दिखती भी है। डॉक्टर प्रकाश चन्द्र गुप्त का यह कथन नागार्जुन के कृतित्व की सही व्याख्या करता है- नागार्जुन ऐसा साहित्यकार है जो अभाव में ही जन्मे हैं, पीड़ित वर्ग के कष्टों को उन्होंने स्वयं झेला है। निःसंदेह ऐसा ही व्यक्ति भारत की निम्नवर्गीय जनता का सच्चा सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व कर सकता है।

प्राचीन मिथिला के तरौनी गाँव में सन् 1911 में वैद्यनाथ मिश्र यानी नागार्जुन का जन्म हुआ था। मैथिली और हिन्दी में समान अधिकार रखने वाले नागार्जुन ने बचपन में ही जमींदारों के क्रियाकलापों को खुली आँखों से देखा था और यहीं वितृष्णा और क्रोध कवि की साहित्यिक सोच की नींव भी बने।

बाबा नागार्जुन के काव्य की खास बात यह थी कि वे कविता के सहारे जनभावनाओं को न केवल उद्वेलित करते थे बल्कि उनमें आवश्यक लड़ाई का हौसला भी भर देते थे। इब्बार रब्बी ने रघुवीर सहाय और श्रीकांत वर्मा से नागार्जुन के काव्य के अंतर और अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए कहा भी है, 'वह समाज जो आदमी का शोषण कर रहा है, उसकी मानसिकता को उजागर करते हैं अप्रत्यक्ष रूप से श्रीकांत वर्माय उसके स्रोतों की पोल खोलते हैं रघुवीर सहायय और उससे लड़ना सिखाते हैं नागार्जुन।'

आपातकाल के समय बाबा नागार्जुन की जनपक्षधरता को लेकर प्रतिबद्धता को बखूबी देखा भी गया। श्रीकांत वर्मा आपात-काल के पक्ष में खड़े थे; रघुवीर सहाय सांकेतिक प्रतिवाद कर रहे थे और नागार्जुन न केवल तल्ख तेवर वाली कवितायें रच रहे थे, बल्कि स्वयं आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर और जेल की सजा भोगकर आपातकाल का विरोध कर रहे थे।

'उतर चुका है रंग आज भूरी बिल्ली का/ पटना आकर टूट गया है दम दिल्ली का/ इसी ठेठ अंदाज में बाबा नागार्जुन ने आपातकाल का तीखा विरोध किया।'

बाबा नागार्जुन के काव्य साहित्य को प्रमुखता से चार श्रेणियों में रखा जा सकता है; (क) रागबोध यानी प्रकृति सौंदर्य और प्रेम आधारित कवितायें, (ख) यथार्थपरक कवितायें जिनमें समय और समाज का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ दर्शाया गया है, (ग) राष्ट्रीयता से युक्त कवितायें, (घ) व्यंग्य प्रधान कवितायें।

लेकिन बाबा नागार्जुन के काव्य में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का व्यंग्यात्मक चरित्र-चित्रण ही प्रमुखता से दिखता है। नागार्जुन जन चेतना के स्वरों को शब्द देते बिलकुल भी हकलाते नहीं हैं। नागार्जुन क्रांति, समता, प्रगति एवं जनवाद का दामन थामकर ही अपनी कविताओं में प्राण फूँकते हैं।

भूखे रहकर आधा खाकर दिन पर दिन दुबराते हैं,/ हड्डी छेद रहा है जाड़ा, बरबस दाँत बजाते हैं। किसान का दर्द बयां करने के लिये बाबा नागार्जुन ऐसा जीवंत चित्र खींचते है कि सुनने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसान की पत्नी ही बीमार है लेकिन चक्की पीस रही है, बच्चे बीमार हैं और दवा-दारू का इंतजाम नहीं। ऐसे ग्राम्य जीवन का चित्र रेखांकित करते हुए नागार्जुन कहते हैं, 'कैसे सूखा टिक्कड़ तोड़, हाय नमक तक मिलता नहीं उधार जी,/ दिलवा भी दो दवा कहीं से, बच्ची है बीमार जी,/ निकल नहीं पाती है घर से बीवी है लाचार जी,/ तुम्हें दुआ दे रही फटी साड़ी के सौ सौ तार जी।'

अपनी कविताओं के माध्यम से नागार्जुन सरकार और सिस्टम पर सवाल उठाते हैं कि किसान बर्बाद हो या खस्ताहाल इसे दिसम्बर को सरोकार नहीं। किसान-मजदूर के वोट चाहिये उसका विकास नहीं। दरअसल नागार्जुन के समय जो समाज था, वह जीर्ण-शीर्ण, विषमताओं के अंबारों से आछन्न, धुँध एवं कुहांसों से घिरा हुआ था; किन्तु इस अभेद्य चक्रव्यूह को भेदकर उनका रहस्योद्घाटन करने की क्षमता उनमें लक्षित होती थी। एक तरफ चंद लोगों के लिये सब कुछ उपलब्ध हैं और दूसरा तरफ एक बड़े तबके के हिस्से गरीबी और भुखमरी का अभिशाप। सरकारें गरीबी हटाने का नारा देती हैं लेकिन वह भी इन चंद लोगों की हित चिन्ता को ही तत्पर दिखती हैं।

'जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं व्यौपारी हैं,/ अंदर अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दर धारी हैं,/ माताओं पर, बहनों पर घोड़े दौड़ाये जाते हैं/ मार पीट है, लूट पाट है, तहस नहस बरबादी है,/ जोर जुलुम है, जेल- सेल है, वाह खूब आजादी है।'

नागार्जुन का ये पंक्तियाँ मुंशी प्रेमचंद के गोदान की सामाजिक संरचना को सामने प्रस्तुत कर देती है। बाबा नागार्जुन की सूक्ष्मतर दृष्टि राजनीतिक कुचक्रों का भी निरीक्षण करती है। गांधीजी के देश में राजनीति और नेताओं के ऐसे पतन से बाबा नागार्जुन के कवि मन में गहरा आक्रोश भरा हुआ है।

'लोग दुखी हैं अन्न वस्त्र का है न ठिकाना/ लाल किले से टकराता है/ नया तराना/ नये हिन्द का नया ढंग है/ नीति निराली/ मुट्ठी भर लोगों के चेहरों पर लाली।'

ऐसे में सहज ही समझा जा सकता है कि जनकवि नागार्जुन आजादी के पहले, आजादी के बाद और आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। नागार्जुन की जनपक्षधरता आज बदले हुए माहौल में और ज्यादा व्यावहारिक और प्रासंगिक जान पड़ती है। बाबा नागार्जुन की प्रासंगिकता इसलिये आज ज्यादा महसूस होती है, जब पूँजीवाद का प्रचंड प्रभाव जनसामान्य को बड़ी ही चालाकी से हाशिये पर ठेल रहा है। आज लोकतांत्रिक माहौल होने के बावजूद आम जन की दैंनदिन चुनौतियाँ कहीं ज्यादा बढ़ गयी हैं। विकास के नाम पर कंक्रीट की अट्टालिकायें खड़ी हो रही हैं और उनके सामने ही झुग्गी-झोपड़ियों में रहने को असंख्य लोग अभिशप्त हैं। अपनी कविता :तेरी खोपड़ी के अंदर- नागार्जुन लिखते हैं, 'तुने मेरा दिल जीत लिया/ लेकिन तू अब/ इतना तो जरूर करना/ मुझे उस नाले के करीब/ ले चलना कभी/ जहाँ कल्लू का कुनबा रहता है/ मै उसकी बूढ़ी दादी के पास/ श्रीमान अब्बाजान के पास/ चाय पी आऊँगा कभी।'

यहाँ जनवादी कवि नागार्जुन जाति-धर्म के बंधन तोड़ कर सर्वहारा के साथ खड़े तो नजर आ ही रहे हैं, साथ ही वे झोपड़-पट्टियों में गुजर-बसर करने को मजबूर गरीब आदमी का दर्द भी रेखांकित करते हैं। हमारे महानगरीय जीवन में तो पहले से ही एक तरफ गगनचुम्बी अट्टालिकायें और दूसरी तरफ झोपड़-पट्टियाँ शामिल रही हैं, चाहे फिर हर सरकार ने झोंपड़ियों में ठिठुरते-बिलखते लोगों को रोटी, कपड़ा और मकान देने का चुनावी वायदा किया हो। ऐसे ही हालात देखकर जनकवि नागार्जुन की कलम बोल पड़ती है, 'देश हमारा भूखा नंगा घायल है बेकारी से। मिले न रोजी रोटी भटके दर-दर बने भिखारी से।'

बड़ा सवाल है कि इतने चुनाव गुजर गये, इतनी सरकारें आई और चली गयी लेकिन सच्चाई यह है कि आज महानगरों से निकल कर अमीर और गरीब के बीच की खाही छोटे कस्बाई जीवन से लेकर ग्रामीण समाज में कहीं ज्यादा गहरा गयी है। एक तरफ मॉल कल्चर खास तबके के जीवन का हिस्सा बन चुकी है तो दूसरी तरफ एक बड़ा वंचित तबका सस्ते राशन की सरकारी गल्ले की दुकान में फैले भ्रष्टाचार को लंबी कतारों में खड़ा कातर भाव से देख रहा है। गरीब और हाशिये पर खड़े आदमी के लिये सत्ता प्रतिष्ठान के घड़ियाली आँसू चुनावों में नजर आते हैं बाकि समय तो खादी धन्नासेठों की मिजाजपुर्सी में लगी रहती है, 'खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है। बिड़ला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली है।।'

बाबा नागार्जुन के समय जो हालात किसान और श्रमिकों के थे, उनमें आज कितना बदलाव आया है? नागार्जुन ने तब लिखा था, 'जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं व्यापारी हैं,/ अंदर अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दर धारी हैं।'

लेकिन क्या आज भी परिस्थितियाँ जस की तस नहीं बनी हुई हैं। क्या किसान आत्महत्या के आँकड़े सच्चाई बयां नहीं कर रहे। तमाम सरकारी घोषणाओं और किसान सब्सिडी के भरसक दावों के बावजूद लगातार किसान आत्महत्या के आंकड़े विकराल होते जा रहे हैं।

'कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास/ कई दिनों तक काली कुतिया सोई उसके पास/ कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त/ कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त'

ये नजारा बुंदलेखंड के आत्महत्या करते और खाली होते गांवों में दिख जाये तो आश्चर्य नहीं होगा।

बाजारवाद के दौर में हर साल हजारों की तादाद में किसान खामोशी के साथ अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं लेकिन मुख्यधारा के साहित्य में ऐसे मुद्दे अब कमजोर पड़ने लगे हैं। इसलिये दशकों पहले निकले जनकवि बाबा नागार्जुन के बोल सच लगते हैं। शायद इसीलिये बाबा नागार्जुन को कालजयी कवि कहा गया है और उनके काव्य की जनपक्षधरता उन्हें प्रेमचंद के करीब खड़ा करती है। कह सकते हैं कि जन के मन की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानकर उसे कविता में अभिव्यक्ति देने वाले नागार्जुन का काव्य आने वाले दशकों में भी हाशिये पर खड़े आम आदमी के लिये क्रांतिदूत साबित होता रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास -बच्चन सिंह
नागार्जुन- कवि और कथाकर -सत्यनारायण
नागार्जुन की काव्य यात्रा -डॉ0 रत्न
नागार्जुन रचना संचयन -राजेश जोशी, साहित्य अकादमी
नागार्जुन रचनावली, नागार्जुन -शोभाकांत, राजकमल प्रकाशन.
नागार्जुन की कविता में व्यंग्य बोध- डॉ0 रमाकांत शर्मा (फिर फिर नागार्जुन -(संपादक) विश्वरंजन)
कविता के नए प्रतिमान- डॉ0 नामवर सिंह
नागार्जुन का विक्षोभ रस, (हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान-मैनेजर पाण्डेय)
नागार्जुन का काव्य शिव्प, जेएनयू इंडिया

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 3,82-86
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 दिसम्बर 2015

स्त्री विमर्श के मूल्य और स्त्री लेखन

डॉ. शिवा मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *स्त्री विमर्श के मूल्य और स्त्री लेखन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शिवा मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

विमर्श शब्द अंग्रेजी के *डिस्कोर्स* के अनुवाद के रूप में हिन्दी में प्रचलित है। विमर्श अथवा प्रोक्तियाँ बड़े कौशल के साथ बहुत बड़े जनसमुदाय को तत्काल प्रभावित करने की शक्ति रखती है और बड़ी सीमा तक शक्ति-स्रोत एवं शक्ति सन्तुलन का कार्य करती है। *किसी भी प्रकार का विमर्श या तो स्थापित सत्ता सन्तुलन को विचलित करता है, या इसे मजबूत और दृढ़ बनाता है।*[1] इस प्रकार विमर्शों का उपयोग या प्रोक्तियों का प्रयोग विशेष प्रकार के सांस्कृतिक-राजनीतिक आग्रहों की स्थापना, पुष्टि और औचित्यपूरकता के लिये होता है। *स्त्री विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसमें स्त्री स्वतंत्रता, समानता और अस्तित्व बोध की न्यायसम्मत वकालत की जाती है।*[2] मेरा ऐसा मानना है कि एक ऐसा सामाजिक परिवर्तन हो, जहाँ स्त्री भयमुक्त हो, जहाँ सम्मान अपने लक्ष्य तथा गन्तव्य तक पहुँच सके। उसे पुरूषों के समान स्वतंत्रता, सुरक्षा और आर्थिक निर्भरता के समुचित साधन उपलब्ध हों, परिवार एवं समाज में इनके विचारों को सम्मान मिले। शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति आदि में उनकी बराबर की भागीदारी हो। यदि संक्षेप में कहा जाये तो महिलाओं को समर्थ, सुयोग्य और सबल बनाना ही स्त्री सम्बन्धी विमर्श का ध्येय है।

पुरातन काल से ही नारी सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था की धुरी रही है। नारी क्षमता का सदुपयोग कर ही प्राचीन भारत विश्व का *जगद्गुरू* कहलाया। नारियों ने अपने अद्भुत, शौर्य, पराक्रम, वीरता, दक्षता व कार्यकुशलता से भारतीय कला, संस्कृति, नृत्य, गायन, वादन साहित्य समेत विज्ञान-वेद-वेदान्त को गौरवान्वित कर भारत को सोने की चिड़िया बनाया।

वर्तमान दौर में स्त्री-विमर्श एवं महिला सशक्तिकरण महिलाओं के प्रति होने वाली प्रत्येक असमानता, भेदभाव आदि को लेकर पूर्ण सतर्क है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जहाँ भारत में हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, कन्याओं के अवैध व्यापार अधिनियम, दहेज निरोधक अधिनियम 1961, अश्लील चित्र निवारण अधिनियम 1986,

* सहायक अध्यापिका, काशी बालिका शिक्षा निकेतन इ. का. शिवपुरवा वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 आदि विभिन्न संवैधानिक प्रक्रियाओं, कानूनों द्वारा महिलाओं के पक्ष में महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये, वहीं घरेलू हिंसा निरोधक अधिनियम 2005 को पारित कर भारत सरकार ने महिलाओं के प्रति होने वाली घरेलू हिंसा पर पूर्ण रोक लगाने का प्रयास किया है। इन सभी सद्प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि अब स्त्रियाँ भली-भांति समझने लगी है कि उनकी दुर्गति के लिये एक ओर अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, पारम्परिक मान्यतायें एवं समाज की पुरूष प्रधानता उत्तरदायी है, तो दूसरी ओर उनका अपना ही नारी-समाज, पुरूष-स्त्री का भेदभाव करके उन्हें शिक्षित होने में अनेक बाधायें पहुँचाया है, शोषण कर शिकार होने पर मर्यादा एवं लोकलज्जा की बात कर उन्हें अन्यायी को दण्ड देने से रोकता है, उन्हें चुप रहने को बाध्य करता है और बहु के प्रति दहेज-प्रताड़ना एवं उपेक्षापूर्ण व्यवहार करता है।

मगर नारी ने पत्नी के रूप में कैकेयी बनकर राजा दशरथ के प्राणों की रक्षा की। सावित्री बनकर पति सत्यवान को यमराज के मृत्युपाश से मुक्त कराया। द्रौपदी के रूप में दुर्दिन में पांचों पाण्डवों का साथ दिया। गांधारी, सीता, अनुसूइया बनकर पातिव्रत धर्म निभाया। मां के रूप में कैकेयी, यशोदा, सीता, द्रौपदी, शुद्धोधन, शकुन्तला, सुनीति व अशिज बनकर भरत, राम, कृष्ण, लव-कुश, महात्मा बुद्ध, ध्रुव व कक्षिवान जैसे सुसंस्कारित बहादुर योद्धा को अपनी कोख से जन्म देकर न केवल माता-पिता, कुल-खानदान, बल्कि सम्पूर्ण भारत वर्ष को गौरवान्वित किया। पुत्री के रूप में गार्गी, मैत्रेयी, विश्ववारा, घोषा, लोपामुद्रा, उर्वशी, अपाला, सिकता, निवावरी बनकर भारतीय वेद-वेदान्त को सुशोभित किया।

इतिहास साक्षी है कि स्त्री किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से पीछे नहीं रही हैं। स्त्रियों ने अपनी कार्यकुशलता, दक्षता व पौरूषत्व के बल पर यह सिद्ध कर दिया है कि, यदि वे चाहें, एक संकल्प लें- तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता एवं विशिष्टता अभी भी सिद्ध कर सकती है।

इसीलिये आज की स्त्री प्रशासनिक कार्यों से लेकर राजनीति तक अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाने के लिये साधनरत है। आज समाज के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की सहभागिता दिखाई पड़ती है। आज स्त्रियाँ प्रबन्धन, डॉक्टरी, इंजीनियरी, तकनीकी, प्रशासन, पुलिस, वकालत, पत्रकारिता, शिक्षण, डाक-तार, रेलवे, बस-परिवहन, बैंक, साइबर कैफे, होटल, हवाई यातायात सेवा आदि विविध क्षेत्रों में कामकाज करती दिखायी देती हैं। आज घर की चहारदीवारी को पार करके स्त्रियों ने अपनी नई पहचान बनाई है। लक्ष्मीबाई, सरोजनी नायडू, महादेवी वर्मा, आदि के युग से निकल कर आज की स्त्री इन्दिरा गांधी, सोनिया गांधी, जयललिता, मायावती, उमा भारती, सुषमा स्वराज, प्रतिभा देवी पाटिल, किरण बेदी, कल्पना चावला, सानिया मिर्जा, साइना नेहवाल, निर्मला जैन, ममता कालिया, कृष्णासोवती बन *कलम की सिपाही* बन गयीं है।

साहित्यिक क्षेत्र में भी मध्ययुगीन व आधुनिक स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। भक्ति आन्दोलन समेत स्वतंत्रता आन्दोलन में नारी कवयित्रियों व लेखिकाओं की अहं भूमिकार ही है। नारी कवयित्रियों ने अपनी अद्भुत लेखन क्षमता के बल पर न केवल रूढ़िवादी, मनुवादी व सामन्तवादी परम्पराओं को तोड़ा, बल्कि अत्याचारी स्त्री स्वतंत्रता विरोधी पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था पर कड़ा प्रहार भी किया। स्त्री की आजादी, समानता, अधिकार के लिये संघर्षपूर्ण विचारों का उदय, स्त्री-शक्ति का जागरण, स्त्री-साहित्यिक लेखन द्वारा ही सम्भव हुआ है।

साहित्य में *स्त्री विमर्श* की, *लेखन की* शुरूआत काफी पहले ही शुरू हो गयी थी। मीराबाई भक्त के साथ-साथ स्त्री-मुक्ति की सशक्त पक्षधर थीं। इनकी कविता में सामन्ती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैनी स्त्री स्वर की मुखर अभि-व्यक्ति है। इनकी मुक्ति की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी है। मीरा का काव्य स्त्री-मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करता है, जिसकी कीमत राणाजी द्वारा भेजे गये जहर के प्याले को पीकर मीरा को चुकानी पड़ती है, ननद नाराज, सास नाराज, पति नाराज, लेकिन साहस के साथ मीरा व्यवस्था के खिलाफ बगावत करती है। मीरा का काव्य प्रमाण है कि कितनी यातनायें मीरा को दी गयीं- *हे ली म्हासूं हरि बन रह्यो न जाई। सास लड़े मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या सिसाई। पहरो भी राख्यो, चौकी बिठाइयो ताला दियो जड़ाय। पूर्वजन्म की प्रीत पुराणी सो क्यूँ छोड़ी जाय।।*[3]

वह उन्मत्त सी होकर समाज के हर हस्तक्षेप को अस्वीकार करती है। वे लिखती है- *राजा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी। कुँवर पाटवी सो भी बरजै और सहेल्यां सार।।*

मगर मीरा को *या बदनामी लागै मीठी।* इसलिये वह इस *अनूठी चाल* पर चलती चली गयीं- *बैरी सकल जहान* होने के बाद भी उनकी लेखनी थमीं नहीं।

आधुनिक युग की *मीरा* महादेवी वर्मा को भी जेवरों की चाहत नहीं, *स्व* की भूख है। *स्व* यह है कि उसने आंगन नहीं, वह *स्व* चाहिये, जो उसे मिलना ही चाहिये। औरत की आत्मा की परवाह किसी को नहीं। मीरा स्त्री विमर्श की बड़ी पैरोकार हुई, सीमोन तो बाद में आई, महादेवी की *मैं नीर भरी दुख की बदली* बरस कर अपना होना जताती है। वे अपनी समस्त नारी जाति का दुख महसूस करती है, मिलकर मांगेगी तो आकाश मिलेगा। देहरी अपनी-अपनी, आकाश सबका। स्त्री संघर्ष में इसी प्रकार दो कड़ी आगे हैं- एक सरोजनी नायडू और दूसरी सुभद्रा कुमारी चौहान! स्त्रियाँ पुरूष विरोधी नहीं है। स्त्रियाँ मुक्ति चाहती हैं पुरूष की पशुता से।[4]

एनीबेसेंट तो परिवार को इसीलिये गाड़ी के दो पहियों की तरह मानती कहती हैं- *कोई भी पंक्षी एक पंख से नहीं उड़ सकता है। कोई भी राष्ट्र व पुरूष किसी एक वर्ग द्वारा समुन्नत नहीं हो सकता। स्त्रियाँ पत्नी रूप में पुरूष को साहस प्रदान करती है, माता के रूप में भावी सन्तति को इस प्रकार शिक्षित करती है, जिससे वे आत्मसम्मान, स्वतंत्रता व श्रेष्ठ आचरण का अनुगमन कर सकें। ईश्वर की जननी भी शक्ति-स्वरूपा स्त्री है। जब भी कोई विपत्ती आती है, असत् की रक्षा के लिये शक्ति को पुकारते हैं। ईश्वर की दिव्य शक्ति का प्रतिनिधित्व नारी करती है। माँ उसका मधुरतम नाम है।*[5]

इसीलिये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भी माँ के इसी रूप की कैकेयी के रूप में वन्दना करते, पैरवी करते कहते हैं- *माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही!*

गुप्त जी पहली बार भरी सभा में कैकेयी को *अनुताप* करते दिखाते हैं। जिस दृढ़ता से कैकेयी पत्थर का कलेजा लेकर राम को बन भेजती है, उसी साहस के साथ भरत के लिये राम को घर लौट चलने के लिये कहती है- *यह सच है तो फिर लौट चलो तुम घर को/ चौकें यह सुन सब अटल केकई स्वर को।*[6]

कैकेयी अपने *मातृत्व की दुहाई* तक देती है और *महापंक* में घिरी रह कर *रौरव नरक* की यातना तक भोगने को तैयार है। इसके अतिरिक्त, श्री गुप्तजी यशोधरा के रूप में गौतम बुद्ध को उलाहना देने से भी नहीं चूकते-वह कहते हैं- *सखि वे मुझसे कह के जाते* तो कितना अच्छा होता?

क्योंकि- *सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात। पर चोरी चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।*[7]

यह नारी पर नर का जघन्य अपराध नहीं तो और क्या है? शायद इसीलिये वह विमर्श करती है, नारी पर नर का कितना अत्याचार है। लगता है विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है।[8]

विष्णुप्रिया के जीवन में तो निभाई (चैतन्य) के लौटने की कोई उम्मीद ही नहीं। *विरहणी वृजांगना* की राधा की भी यही दशा है। इसीलिये वह समाज-सेवी, परोपकारी बन जाती है। कभी गोवर्धन पर्वत को, कभी जमुना को, कभी वन-उपवन को, वंशी को सहाय बनने की विनती करती है। दुखीजनों का दुख भी हरती है।

हरिऔध की राधा भी, यशोदा की दया भावना से ओत-प्रोत नजर आती है। परोपकारी राधा पवन को *दूतिका* बनाती है, कृष्ण का संदेश मंगाना चाहती है। पवन को भेजते समय उसे रास्ते में काम करती तमाम बातों के साथ-साथ किसान की बेटी जो धूप में तपती होगी, कि चिंता है, कहती है को। तथा कोई क्लान्ता कृषक ललना खेत में जो दिखावे, धीरे-धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना।[9]

नारी-लेखन प्रक्रिया को धार देने का कार्य धरती का स्वर्ग कश्मीर में भी कवयित्रियों द्वारा हुआ, जिसमें- लालद्यंद, हब्बाखातून और अरणिमाल का प्रमुख योगदान रहा है। इन त्रय कवयित्रियों ने अपनी साहित्यिक लेखनी से जातीय संस्कृति ही नहीं, राष्ट्रीय संस्कृति को भी प्रतिबन्धित किया।

भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में लेखन कार्य करने वाली लेखिकाओं में अमृता प्रीतम, अजीत कौर, अदालथा, निर्मला प्रभा, बारदोलोई, बालामणि, नलपत, अनिता देसाई, सुनेत्र गुप्ता, कमलादास, शशिदेश पाण्डेय, नवनीता देव सेन, इन्दिरा गोस्वामी, महाश्वेता देवी, कार्तुल-एन हैदर, प्रभाजीत कौर, बीना पाणि, मोहंती, तारा मीर चंदानी, मालती चंदर, शीला तकराल, एम0 लीलावती, कला प्रकाश, कमलदास, एम0के0 विनोदनी देवी, पोपटी आर, हीरानंदनी, मीना काकोदकर, मीनाक्षी स्वामी, कृष्णा सोवती, पद्मा सचदेव, लिली मिश्रा रे, हिमांशी शोलट, प्रतिभा रे, दलीय कौर तिवाना, मंजीत तिवाना, सुन्दर ए0 उत्तममंदानी, सरस्वती देवी आदि का नाम प्रमुख है।[10] हमारे यहाँ दो तरह का स्त्री लेखन होता

रहा है। पहली तरह के लेखन में स्त्री की परम्परागत छवि की उभरी थी तथा उनके पास स्त्री होते हुये भी *स्त्री दृष्टि* का अभाव था। यथार्थ की पकड़ ढीली थी, पहचान कमजोर, ढुलमुल थी। ऐसे लेखन को *सूडो किस्म* का माना गया।[11]

मगर स्त्रियों की सोच में परिवर्तन आने लगा है। वे अब यथास्थिति में नहीं जीना चाहतीं। उनके भीतर प्रश्न, जिज्ञासायें, शंकायें, प्रतिक्रियायें जागने लगी हैं; क्योंकि- *व्यक्ति तभी स्वतंत्रता प्राप्त करता है, जब वह दूसरों की स्वतंत्रता को निरंतर पहचानने की चेष्ठा करता है।*[12] लेकिन काननू की विशेषज्ञ श्री अरविन्द जैन जी के शब्दों में, मैं कह सकती हूँ कि *जब तक पूंजी पर पुत्राधिकार बना रहेगा, तब तक नारी मुक्ति, समानाधिकार, न्याय, स्वतंत्रता, सम्मान, पहचान या गरिमा का सपना साकार होना असम्भव है।*[13] मगर स्त्री-विमर्श तभी शक्तिशाली बनेगा, जब स्त्रियाँ अपने अनुभवों को बेबाक अभिव्यक्ति देंगी। जब वे अपने प्रति मानवीय व्यवहार की मांग करेंगी।[14] लेकिन सन्तोष की बात है कि तसलीमा नसरीन हों, नलिनी सिंह हों या किरन बेदी, मेघा पाटकर हों या प्रभा खेतान- सभी लेखिकाओं के लेखन में नारी न्याय का संघर्ष, नारी अस्मिता के मुद्दे सामने आने लगे हैं और इसलिये पचौरी का कहना सही है कि- *शेखर कपूर को फूलन रोकती है, तसलीमा इमामों की नींद उड़ा सकती है.....नलिनी सिंह या मृणाल पाण्डे टी0वी0 सीरियल स्त्रियों को नये अर्थ देती है।*[15] इसीलिये एक नये तेवर में, नये अंदाज में तसलीमा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती नारियों को कहती हैं- *नारी! तुम उठो। अपनी रीढ़ की हड्डी सीधी करके एक बार खड़ी हो जाओ। तुम चलो। यह रास्ता तुम्हारा है। यह मैदान तुम्हार है। यह सरसों के खेत तुम्हारे हैं, रोशनी का पथ तुम्हारा है।*[16] लेखिकाओं को आगे आने के लिये कलम उठाने हेतु प्रेरित करती तसलीमा नसरीन जी कहती हैं- *जिस दिन यह समाज स्त्री शरीर का नहीं, शरीर के अंग-प्रत्यंग का नहीं, स्त्री की मेघा और श्रम का मूल्य देना सीख जायेगा, सिर्फ उसी दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।*[17] निष्कर्षतः, महादेवी वर्मा जी भी यही *स्वत्व* यही अधिकार की अभिलाषिणी हैं, वह लिखती हैं- *हमें न, किसी पर पराजय चाहिये, न किसी से पराजय। न किसी पर प्रभुत्व चाहिये, न किसी पर प्रभुता। केवल वह स्थान, वे स्वत्व चाहिये, जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।*[18]

इसीलिये स्त्री-विमर्श केन्द्र में मुख्यतः यही शामिल है- स्व के अन्तर्गत देह, मन और अर्थ, तीनों की आत्मनिर्भरता। वस्तुतः स्त्री विमर्श घोर यथार्थपरक होने के साथ-साथ आक्रामक भी है। स्त्री-विमर्श के माध्यम से स्त्री को वैचारिक, शारीरिक, आर्थिक और मजबूती हासिल करनी है। उसे किरन बेदी की तरह अपने अन्तर की संकल्प शक्ति को जगाना होगा, कल्पना चावला की तरह अपने विचारों को अन्तरिक्ष तक उड़ान भरने का साहस प्रदान करना होगा। डॉ0 आरती शर्मा के शब्दों में मैं यही कहना चाहूँगी- *नारी जग का मूलाधार है, उसे सबल बनना होगा/ चली आ रही उसकी जंग को, उसे स्वयं लड़ना होगा।*[19]

सन्दर्भ ग्रंथ

[1]*नयी सहस्राब्दी में स्त्री-विमर्श : चिन्तन के विविध संदर्भ,* विमर्श एवं दलित स्त्री-विमर्श शीर्षक, पृष्ठ संख्या 165, प्रथम संस्करण 2012,(ले0) डॉ0 सियाराम, प्रकाशक- ओमेगा पब्लिकेशन्स, 4378/4 बी0जी0 4, जे0एम0डी0 हाउस, गली मुरारीलाल अंसारी रोड, नई दिल्ली-पिन-110002

[2]वही, सम्पादकीय से उद्धृत

[3]वही, मीरा : स्त्री मुक्ति की आवाज शीर्षक, पृष्ठ संख्या 177 से उद्धृत

[4]*मिलकर मांगोगे तो आकाश मिलेगा,* संस्मरण अंक, अंक संख्या-16, प्रसंग पत्रिका (सम्पादक) शम्भू बादल, (लेखिका) पद्मजा शर्मा

[5]*भारतीय नारी : कल आज और कल,* प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या 11, संस्करण-प्रथम 2007 (लेखक) सरोज कुमार गुप्ता, प्रकाशन संस्थान, 4715/21, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली

[6]*साकेत*- मैथिली शरण गुप्त, अष्टम सर्ग, पृष्ठ संख्या 178, संवत् 2036, प्रकाशन-साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी)

[7]*यशोधरा,* पृष्ठ संख्या 20, 5वां पद, संस्करण 2010, प्रकाशन-साहित्य सदन, 184 तलैया, झांसी (बुन्देलखण्ड)

[8]*विष्णुप्रिया,* पृष्ठ संख्या 42, संस्करण 2008, साहित्य सदन झांसी, उ0प्र0

[9]*प्रिय प्रवास,* षष्ठ सर्ग, पृष्ठ संख्या 100, सं0 2008, (ले0) हरिऔध, प्रकाशक-लोकभारती, प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद 211001

[10]*भारतीय नारी : कल आज और कल, नारी लेखिका और कवयित्रियाँ* शीर्षक, पृष्ठ संख्या 157, संस्करण-प्रथम 2007 (लेखक) सरोज कुमार गुप्त

[11]*इण्डिया टुडे,* साहित्यिक वार्षिकी-1996, पृष्ठ संख्या 19 (लेखिका) कुसुम अंचल

[12]*उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श-* (ले0) सुधीर पंचौरी, पृष्ठ संख्या 116 से उद्धृत

[13]*परिवार निजी सम्पत्ति, राज्य की उत्पत्ति,* पृष्ठ संख्या 67-68 (ले0) एंगेल्स से उद्धृत

[14]*संस्कृतिवर्चस्व और प्रतिरोध,* पृष्ठ संख्या 70 (ले0) पुरूषोत्तम अग्रवाल से उद्धृत

[15]*हंस,* पृष्ठ संख्या 36 (ले0) सुधीर पचौरी

[16]*औरत के हक में,* पृष्ठ संख्या 125-26 (लेखिका) तसलीमा नसरीन

[17]वही, पृष्ठ संख्या 99 से उद्धृत

[18]*श्रृंखला की कड़ियाँ,* पृष्ठ संख्या 23 (लेखिका) महादेवी वर्मा

[19]*नयी सहस्राब्दी में स्त्री-विमर्श : चिन्तन के विविध संदर्भ,* महिला सशक्तिकरण में अध्यापक की भूमिका शीर्षक, लेख पृष्ठ संख्या 170 (लेखिका) डॉ0 आरती शर्मा, प्रकाशक- ओमेगा पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, नई दिल्ली-पिन-110002